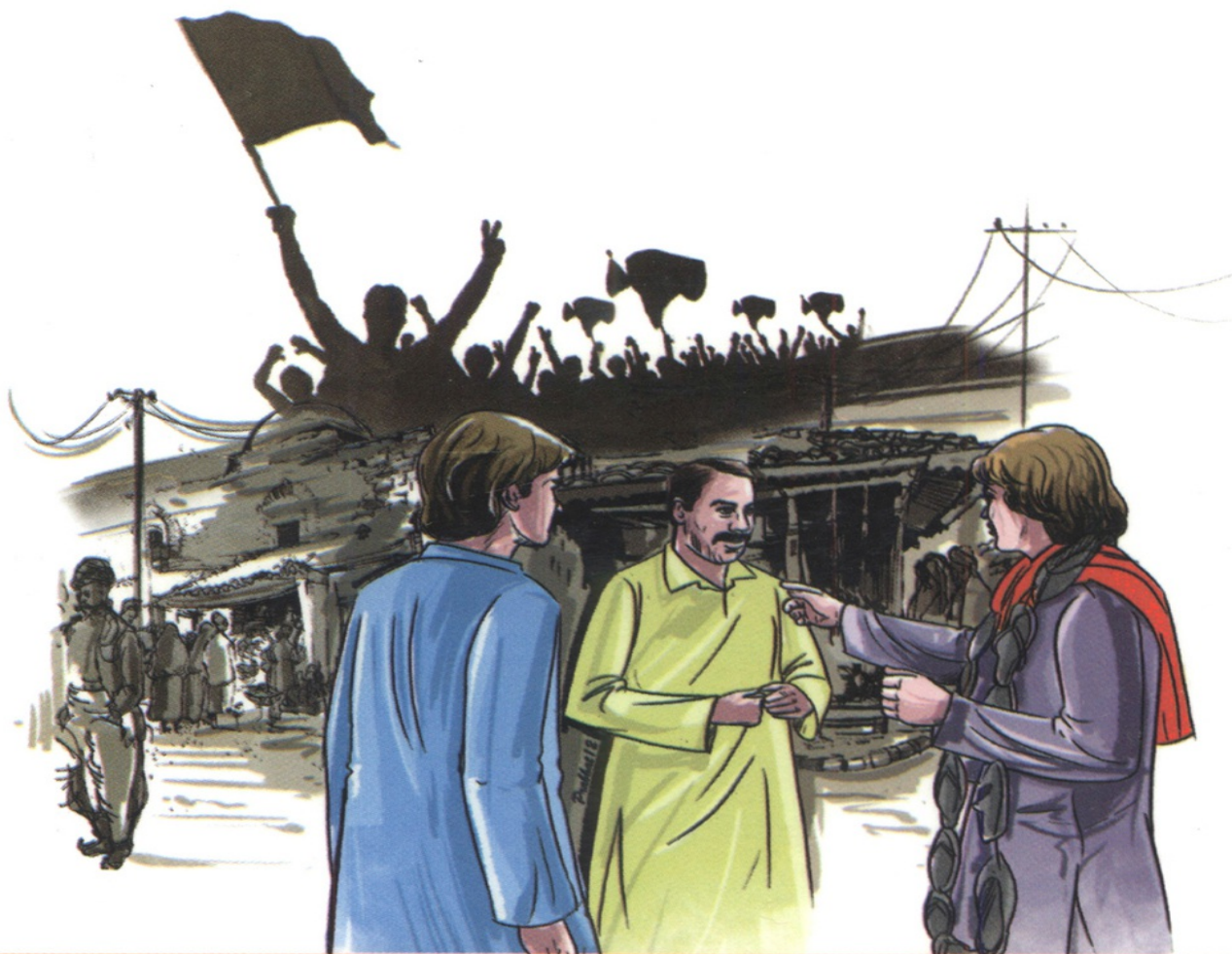


मुंशी  
प्रेमचंद साहित्य



# प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियां



जुलूस तथा अन्य कहानियां

प्रेमचंद की प्रत्येक कहानी मानव-मन के अनेक दृश्यों, चेतना के अनेक छोरों, सामाजिक कुरीतियों तथा आर्थिक उत्पीड़न के विविध आयामों को अपनी संपूर्ण कलात्मकता के साथ अनावृत्त करती है। कफन, नमक का दारोगा, शतरंज के खिलाड़ी, वासना की कड़ियाँ, दुनिया का सबसे अनमोल रतन आदि, सैकड़ों रचनाएँ ऐसी हैं, जो विचार और अनुभूति दोनों स्तरों पर पाठकों को आज भी आंदोलित करती हैं। वे एक कालजयी रचनाकार की मानवीय गरिमा के पक्ष में दी गई उद्घोषणाएँ हैं। समाज के दलित वर्गों, आर्थिक और सामाजिक यंत्रणा के शिकार मनुष्यों के अधिकारों के लिए जूझती मुंशी प्रेमचंद जी की कहानियाँ हमारे साहित्य की सबलतम निधि हैं।

# प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ



**ISBN : 81-7182-406-4**

**प्रकाशक** : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.  
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II  
नई दिल्ली-110020  
**फोन** : 011-41611861  
**फैक्स** : 011-41611866  
**ई-मेल** : [sales@dpb.in](mailto:sales@dpb.in)  
**वेबसाइट** : [www.dpb.in](http://www.dpb.in)  
**संस्करण** : 2016

---

**PREM CHAND KI SARVASHRESTHA KAHANIYAN**

by : Prem Chand

---

## अनुक्रम

[प्रकाशकीय](#)

[ईदगाह](#)

[जुलूस](#)

[दो बैलों की कथा](#)

[रामलीला](#)

[बड़े भाई साहब](#)

[नशा](#)

[लाग-डाट](#)

[आत्माराम](#)

[प्रेरणा](#)

[सवा सेर गेहूँ](#)

[गुल्ली-डंडा](#)

[लॉटरी](#)

[शतरंज के खिलाड़ी](#)

[मनोवृत्ति](#)

[पूस की रात](#)

[लेखक](#)

[मोटेरामजी शास्त्री](#)

[जुर्माना](#)

प्रकाशकीय

## प्रेमचंद की कहानियों का रचना संसार

कहानी, साहित्य की सबलतम विधा है। वह एक ऐसा दर्पण है, जिसमें व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंधों, क्रियाविधियों, उसके सुख-दुःख के क्षणों की सजीव, हृदयग्राही तथा मार्मिक तस्वीरें देखी जा सकती हैं। इसके उन्नयन और विकास में विश्व के अनेक कथाकारों ने जो योगदान किया, वह भाषा-शैली, रूप-विधान, कला-सौष्ठव तथा टेकनीक की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह हिंदी कहानी की उपलब्धि है कि इसे अपने विकास के आदिकाल में मुंशी प्रेमचंद जैसे मानव-मन के कुशल चितरे मिले, जिनके कहानी-साहित्य ने हिंदी-उर्दू में एक नए युग का सूत्रपात किया।

प्रेमचंद की कहानियों का फलक व्यापक है। हिंदी के प्रख्यात समीक्षक डॉ. गौतम सचदेव ने मुंशी प्रेमचंद की कहानियों का मूल्यांकन करते हुए कहा— 'विचार तत्त्व उनकी कहानियों का निर्देशक है। लाहौर के मासिक-पत्र 'नौरंगे खयाल' के संपादक के यह पूछने पर कि आप कैसे लिखते हैं? प्रेमचंद जी ने उत्तर दिया, 'मेरी कहानियां प्रायः किसी-न-किसी प्रेरणा या अनुभव पर आधारित होती हैं। इसमें मैं ड्रामाई रंग पैदा करने की कोशिश करता हूं। केवल घटना-वर्णन के लिए या 'मनोरंजन घटना' को लेकर मैं कहानियां नहीं लिखता। मैं कहानी में किसी दार्शनिक या भावात्मक लक्ष्य को दिखाना चाहता हूं। जब तक इस प्रकार का कोई आधार नहीं मिलता, मेरी कलम नहीं उठती।' प्रेमचंद का उक्त वक्तव्य आज भी प्रासंगिक है।

शैल्पिक विशेषताओं की दृष्टि से भी प्रेमचंद की कहानियां अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। अपने समकालीन कथा-साहित्य और परवर्ती पीढ़ी को उनकी कहानियों ने यथेष्ट रूप से प्रभावित किया है।

हमारी इच्छा थी कि प्रेमचंद के अमर कहानी साहित्य को नयनाभिराम ढंग से डायमंड के पाठकों के समक्ष कम मूल्य में प्रस्तुत किया जाए। प्रस्तुत संकलन इसी दिशा में एक प्रयास है।

- नरेंद्र कुमार

## ईदगाह

रमज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं हैं, पड़ोस के घर से सुई-तागा लाने को दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जाएगी। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असंभव है। लड़के सबसे ज़्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज़ है। रोजे बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गई। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिंताओं से क्या प्रयोजन। सेवियों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेवियाँ खाएँगे। वह क्या जानें कि अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं! उन्हें क्या खबर कि चौधरी आज आँखें बदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाए। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खज़ाना निकालकर गिनते हैं और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक-दो, दस-बारह। उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास एक, दो, तीन, आठ, नौ, पंद्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीज़ें लाएँगे-खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या! और सबसे ज़्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार-पाँच साल का गरीब-सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता न चला, क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुनने वाला था। दिल पर जो बीतती थी, वह दिल ही में सहती और जब न सहा गया तो संसार से विदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रूपए कमाने गए हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आएँगे। अम्मीजान अल्लाहमियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीज़ें लाने गई हैं, इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज़ है और फिर बच्चों की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती हैं। हामिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें लेकर आएँगी तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहाँ से

उतने पैसे निकालेंगे। अभागिनी अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं। आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती? इस अंधकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को? इस घर में उसका काम नहीं, लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब? उसके अंदर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दलबल लेकर आए, हामिद की आनंद-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है— तुम डरना नहीं अम्मा, मैं सबसे पहले जाऊँगा। बिलकुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है? उसे कैसे अकेले मेले जाने दे! उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाए तो क्या हो! नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्हीं-सी जान, तीन कोस चलेगा कैसे? पैर में छाले पड़ जाएँगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद ले लेगी, लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकाएगा? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घंटों चीज़ें जमा करते लगेंगे। माँग ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फहीमन के कपड़े सिए थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी, इसी ईद के लिए। लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती। हामिद के लिए कुछ नहीं है तो दो पैसे का दूध तो चाहिए ही। अब तो कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटवे में। यही तो बिसात है और ईद का त्यौहार! अल्लुहा ही बेड़ा पार लगाएगा। धोबन और नाइन और मेहतरानी और चूड़िहारिन सभी तो आएँगी। सभी को सेवैयाँ चाहिए और थोड़ा किसी की आँखों नहीं लगता। किस-किस से मुँह चुराएगी! और मुँह क्यों चुराए? साल-भर का त्यौहार है। ज़िंदगी खैरियत से रहे, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है। बच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जाएँगे।

गाँव से मेला चला। और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सबके सब दौड़कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथ वालों का इंतजार करते। ये लोग क्यों इतना धीरे चल रहे हैं? हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गए हैं। वह कभी थक सकता है? शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठाकर आम पर निशाना लगाता है। माली अंदर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फर्लांग पर हैं। खूब हँस रहे हैं। माली को कैसा उल्लू बनाया है!

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कालेज है, यह क्लबघर है। इतने बड़े कालेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे। सब लड़के नहीं हैं जी। बड़े-बड़े आदमी हैं, सच! उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं, इतने बड़े हो गए, अभी तक पढ़ने जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर? हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिलकुल तीन कौड़ी के, रोज मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे



और क्या। क्लबघर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुरदे की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं, पर किसी को अंदर नहीं जाने देते। और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछों-दाढ़ी वाले और मेमें भी खेलती हैं, सच। हमारी अम्मा को वह दे दो, क्या नाम है, बैट तो उसे पकड़ ही नहीं सकें। घुमाते ही लुढ़क न जाएँ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम।

मोहसिन बोला—चलो, मनो आटा पीस डालती हैं। ज़रा-सा बैट पकड़ लेंगी तो हाथ काँपने लगेंगे। सैकड़ों घड़े पानी रोज निकालती हैं। पाँच घड़े तो मेरी भैंस पी जाती हैं। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तले अँधेरा आ जाए।

महमूद—लेकिन दौड़ती तो नहीं, उछल-कूद तो नहीं सकतीं।

मोहसिन—हाँ, उछल-कूद नहीं सकतीं, लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, तो अम्माँ इतनी तेज़ दौड़ी कि मैं उन्हें पा न सका, सच!

आगे चले। हलवाइयों की दुकानें शुरू हुईं। आज खूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है? देखो न एक-एक दुकान पर मनो होंगी। सुना है रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी दुकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह तुलवा लेता है और सचमुच के रूपए देता है, बिलकुल ऐसे ही रूपए।

हामिद को यकीन न आया—ऐसे रूपए जिन्नात को कहाँ से मिल जाएँगे?

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रूपए की क्या कमी? जिस खजाने में चाहें, चले जाएँ। लोहे के दरवाजे इन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में। हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे खुश हो गए, उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहीं बैठे हैं, पाँच मिनट में कलकत्ता पहुँच जाएँ।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे।

मोहसिन—एक-एक आसमान के बराबर होता है जी। जमीन पर खड़ा हो जाए तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहे तो एक लोटे में घुस जाए।

हामिद—लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे? कोई मुझे वह मंत्र बता दे तो एक जिन्न को खुश कर लूँ।

मोहसिन—अब यह तो मैं नहीं जानता लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत जिन्नात हैं। कोई चीज़ चोरी चली जाए, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमराती का बछवा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला। तब झख मारकर चौधरी के पास गए। चौधरी ने तुरंत बता दिया कि मवेशीखाने में है और वहीं मिला। जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबर दे जाते हैं।

अब उसकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है!

आगे चलें। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिसटिबिल कवायद करते हैं। रैटन! फाम फो! रात को बेचारे घूम-घूमकर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जाएँ।

मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिसटिबिल पहरा देते हैं? तभी तुम बहुत जानते हो। अजी हजरत, यही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मिलते हैं। रात को ये लोग चोरों से कहते हैं कि चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो! जागते रहो!' पुकारते हैं। जभी इन लोगों के पास इतने पैसे आते हैं। मेरे मामूं एक थाने में कानिसटिबिल हैं। बीस रूपए महीना पाते हैं, लेकिन पचास रूपए घर भेजते हैं। अल्ला कसम! मैंने एक बार पूछा था कि मामूं, आप इतने रूपए कहाँ से पाते हैं? हँसकर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लाएँ। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाए।

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं, तो कोई उन्हें पकड़ता नहीं?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला, अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा? पकड़ने वाले तो यह लोग खुद हैं। लेकिन अल्लाह इन्हें सज़ा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े ही दिन हुए मामूं के घर आग लग गई। सारी लेई-पूँजी जल गई। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे। फिर न जाने कहाँ से एक सौ रूपए कर्ज लाए तो बरतन-भाँडे आए।

हामिद—एक सौ तो पचास से ज़्यादा होते हैं।

‘कहाँ पचास, कहाँ एक सौ। पचास एक थैली-भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आएँ।’

अब बस्ती घनी होने लगी थी। ईदगाह जाने वालों की टोलियाँ नज़र आने लगीं। एक से एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए, कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग। ग्रामीणों का वह छोटा-सा दल, अपनी विपन्नता से बेखर, संतोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीज़ें अनोखी थीं। जिस चीज़ की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते। और पीछे से बार-बार हॉर्न की आवाज होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नजर आया। ऊपर इमली के घने वृक्षों की छाया है। नीचे पक्का फर्श है, जिस पर जाजिम बिछा हुआ है और रोजेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गई हैं, पक्की जगत के नीचे तक, जहाँ जाजिम भी नहीं है। नए आने वाले आकर पीछे की कतार में खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रामीणों ने भी वजू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गए। कितना सुंदर संचालन है, कितनी सुंदर व्यवस्था! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सब-के-सब एक साथ खड़े हो जाते हैं। एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जाएँ और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनंतता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानंद से भर देती थीं। मानो भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोए हुए है।

नमाज खत्म हो गई है, लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौने की दुकान पर धावा होता है। ग्रामीणों का वह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो, हिंडोला है। एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी जमीन पर गिरते हुए। यह चर्खी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट, छड़ों से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करो का मजा लो। महमूद और मोहसिन, नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई, ज़रा-सा चक्कर खाने के लिए, वह नहीं दे सकता।

सब चर्खियों से उतरे हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दुकानों की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं। सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, भिश्ती और धोबिन और साधु। वाह! कितने सुंदर खिलौने हैं। अब बोलना ही चाहते हैं। अहमद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ीवाला, कंधे पर बंदूक रखे हुए। मालूम होता है, अभी कवायद किए चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसंद आया। कमर झुकी हुई, ऊपर मशक रखे हुए है। मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उड़ेलना चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है, उसके मुख पर। काला चोगा, नीचे सफेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी, सुनहरी जंजीर, एक हाथ में कानून का पोथा लिए हुए है। मालूम होता है, अभी किसी अदालत में जिरह या बहस किए चले आ रहे हैं। ये सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं, इतने महँगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े, तो चूर-चूर हो जाए। ज़रा पानी पड़े तो सारा रंग धुल जाए। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के?

मोहसिन कहता है—मेरा भिश्ती रोज़ पानी दे जाएगा, साँझ-सवेरे।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आएगा, तो फौरन बंदूक से फ़ैर कर देगा।

नूरे—और मेरा वकील खूब मुकद्दमा लड़ेगा।

सम्मी—और मेरी धोबिन रोज़ कपड़े धोएगी।

हामिद खिलौनों की निंदा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जाएँ। लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि ज़रा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं, लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेषकर जब अभी नया शौक हो। हामिद ललचाता रह जाता है।

खिलौनों के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाब जामुन, किसी ने सोहन हलवा। मजे से खा रहे हैं। हामिद बिरादरी से पृथक् है। अभागों के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता? ललचाई आँखों से सबकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता है—हामिद, रेवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार हैं।

हामिद को संदेह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है। मोहसिन इतना उदार नहीं है, लेकिन यह जानकर भी उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकालकर हामिद की

और बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजा कर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा, अब की जरूर देंगे हामिद, अल्ला कसम, ले जा।

हामिद—रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं?

सम्मी—तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगे?

अहमद—हमसे गुलाब जामुन ले जा हामिद। मोहसिन बदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन बड़ी नियामत है! किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।

मोहसिन—लेकिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते?

महमूद—हम समझते हैं इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जाएँगे, तो हमें ललचा-ललचाकर खाएगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दुकानें लोहे की चीज़ों की हैं, कुछ गिलट और कुछ नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दुकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे खयाल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती हैं, तो हाथ जल जाता है। अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होंगी! फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज हो जाएगी। खिलौने से क्या फ़ायदा। व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। जरा देर ही तो खुशी होती है, फिर तो खिलौने को कोई आँख उठाकर नहीं देखता। यह तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूटकर बराबर हो जाएँगे। चिमटा कितने काम की चीज है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हे में सेंक लो, कोई आग माँगने आए तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्मा बेचारी को कहाँ फुरसत है कि बाजार आए और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं। रोज हाथ जला लेती हैं। हामिद के साथी आगे बढ़ गए हैं। सबील पर सबके-सब शर्बत पी रहे हैं। देखें, सब कितने लालची हैं। इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा, तो पूछूँगा। खाएँ मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुंसियाँ निकलेंगी, आप ही जबान चटोरी हो जाएगी। अब घर से पैसे चुराएँगे और मार खाएँगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी जबान क्यों खराब होगी? अम्मा चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—मेरा बच्चा अम्मा के लिए चिमटा लाया है। हजारों दुआएँ देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखाएँगी। सारे गाँव में चर्चा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है! इन लोगों के खिलौने पर कौन इन्हें दुआएँ देगा? बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं और तुरंत सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिजाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिजाज दिखाऊँगा। खेलें खिलौने और खाएँ मिठाइयाँ, मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिजाज क्यों सहूँ? मैं ग़रीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाता। आखिर अब्बाजान कभी-न-कभी आएँगे। अम्मा भी आएँगी। फिर इन लोगों से पूछूँगा, कितने खिलौने लोगे? एक-एक को टोकरियों खिलौने दूँ और दिखा

दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेवड़ियाँ लीं, तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सबके-सब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें, मेरी बला से। उसने दूकानदार से पूछा, यह चिमटा कितने का है?

दुकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देखकर कहा,

‘यह तुम्हारे काम का नहीं है जी।’

‘बिकाऊ है कि नहीं?’

‘बिकाऊ क्यों नहीं है? और यहाँ क्यों लाद लाए हैं?’

‘तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है?’

‘छः पैसे लगेंगे।’

हामिद का दिल बैठ गया।

‘ठीक-ठीक बताओ।’

‘ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।’

हामिद ने कलेजा मजबूत करके कहा—तीन पैसे लोगे?

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दुकानदार की घुड़कियाँ न सुने। लेकिन दुकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दीं। बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कंधे पर रखा, मानो बंदूक है और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। ज़रा सुनें, सबके सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं?

मोहसिन ने हँसकर कहा—यह चिमटा क्यों लाया पगले? इसे क्या करेगा?

हामिद ने चिमटे को पटककर कहा—ज़रा अपना भिश्ती ज़मीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जाएँ बच्चा की।

महमूद बोला—यह चिमटा कोई खिलौना है?

हामिद—खिलौना क्यों नहीं है। अभी कंधे पर रखा, बंदूक हो गई। हाथ में लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मज़ीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ, तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाए। तुम्हारे खिलौने कितना ही ज़ोर लगावें, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है—चिमटा।

सम्मी ने खंजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—मेरी खंजरी से बदलोगे? दो आने की है।

हामिद ने खंजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खंजरी का पेट फाड़ डाले। बस, एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। ज़रा-सा पानी लग जाए तो खतम हो जाए। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफ़ान में बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया, लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं। फिर मेले से दूर निकल आए हैं, नौ कब के बज गए, धूप तेज़ हो रही है, घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से जिद भी करें, तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद है बड़ा चालाक। इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बालकों के दो दल हो गए हैं। मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ़ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ़। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी गया। दूसरे पक्ष से जा मिला, लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा। जो इस वक़््त अपने को फौलाद कह रहा है, वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाए, तो भिश्ती मियाँ के छक्के छूट जाएँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बंदूक छोड़कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाए, चोगे में मुँह छिपाकर ज़मीन पर लेट जाएँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर रूस्तमे-हिंद लपककर शेर की गर्दन पर सवार हो जाएगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने एड़ी-चोटी का जोर लगाकर कहा—अच्छा, पानी तो नहीं भर सकता।

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—भिश्ती को एक डाँट लगाएगा तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया पर महमूद ने कुमक पहुँचाई—अगर बच्चा पकड़े जाएँ तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे। तब तो वकील साहब के ही पैरों पड़ेंगे।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उससे पूछा—हमें पकड़ने कौन आएगा?

नूरे ने अकड़कर कहा—यह सिपाही बंदूक वाला।

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा—यह बेचारे हम बहादुर रूस्तमे-हिंद को पकड़ेंगे अच्छा लाओ, अभी ज़रा कुश्ती हो जाए। इनकी सूरत देखकर दूर से भागेंगे, पकड़ेंगे क्या बेचारे!

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई, तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग में जलेगा।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जाएगा। लेकिन यह बात न हुई। हामिद ने तुरंत जवाब दिया, आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब। तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती महिलाओं की तरह घर में घुस जाएँगे। आग में कूदना वह काम है, जो रूस्तमे-हिंद ही कर सकता है।

महमूद ने एक जोर और लगाया, वकील साहब कुरसी-मेज पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बावरचीखाने में पड़ा रहेगा।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया। कितने ठिकाने की बात की है पट्टे ने। चिमटा बावरचीखाने में पड़े रहने के सिवा और क्या कर सकता है।

हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की, मेरा चिमटा बावरचीखाने में नहीं रहेगा। वकील साहब कुर्सी पर बैठेंगे, तो जाकर उन्हें ज़मीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा।

बात कुछ बनी नहीं। खासी गाली-गलौज थी, लेकिन कानून को पेट में डालने वाली बात छा गई। ऐसी छा गई कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गए। कानून मुँह से बाहर निकालने वाली चीज़ है। उसको पेट के अंदर डाल दिया जाए, बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखते हैं। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रूस्तमे-हिंद है। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारने वालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने पैसे खर्च किए पर कोई काम की चीज़ न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रंग जमा लिया। सच ही तो है, खिलौने का क्या भरोसा? टूट-फूट जाएँगे। हामिद का चिमटा बना रहेगा बरसों।

संधि की शर्तें तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा—ज़रा अपना चिमटा दो, हम भी देखें। तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किए।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सबसे हाथ में गया और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आए। कितने खूबसूरत खिलौने हैं!

हामिद ने हारने वालों के आँसू पोंछे—मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच। यह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बराबरी करेगा! मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से संतोष नहीं होता। चिमटे का सिक्का खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा?

महमूद—दुआ को लिए फिरते हो। उलटे मार न पड़े। अम्मां जरूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले?

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौने को देखकर किसी की माँ इतनी खुश न होंगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होंगी। तीन पैसों ही में तो सब कुछ करना था, और उन पैसों के इस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल ज़रूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रूस्तमे-हिंद है और सभी खिलौनों का बादशाह।

रास्ते में महमूद को भूख ली। उसके बाप ने केले खाने को दिए। महमूद ने केवल हामिद को साझी बनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गए। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

ग्यारह बजे सारे गाँव में हलचल मच गई। मेले वाले आ गए। मोहसिन की छोटी बहन ने दौड़कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली, तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भाई-बहन में मार-पीट हुई। दोनों खूब रोए। उनकी अम्मां ये शोर सुनकर बिगड़ीं और दोनों को ऊपर से दो-दो चांटे और लगाए।

मियाँ नूरे के वकील का अंत उसके प्रतिष्ठानुकूल इससे ज़्यादा गौरवमय हुआ। वकील जमीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो खूँटियाँ गाड़ी गईं। उन पर लकड़ी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर कागज का कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति सिंहासन पर बिराजे। नूरे ने उन्हें पंखा झलना शुरू किया। अदालतों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो? कानून की गर्मी दिमाग पर चढ़ जाएगी कि नहीं। बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगे। मालूम नहीं, पंखे की हवा से या पंखे की चोट से वकील साहब स्वर्ग-लोक से मृत्यु-लोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया। बड़े जोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूरे पर डाल दी गई।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया। लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो था नहीं, जो अपने पैरों चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आई, उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने चिथड़े बिछाए गए, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटे। नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ से 'छोने वाले, जागते रहो' पुकारते हैं। मगर रात तो अँधेरी होनी ही चाहिए। महमूद को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बंदूक लिए जमीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है। महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डाक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फानन में जोड़ सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है। टाँग जोड़ दी जाती है। शल्यक्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रूपांतर चाहो, कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज़ सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी।

‘यह चिमटा कहाँ था?’

‘मैंने मोल लिया है।’

‘कैसे?’

‘तीन पैसे दिए।’

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया, न पिया। लाया क्या, चिमटा। सारे मेले में तुझे और कोई चीज़ न मिली जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया?

हामिद ने अपराधी-भाव से कहा—तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं, इसलिए मैंने इसे लिया।

बुढ़िया का क्रोध तुरंत स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग, कितना सद्भाव और कितना विवेक है! दूसरों को खिलौना लेते और मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा! इतना जब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गदगद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी।



हामिद इसका रहस्य क्या समझता।

## जुलूस

पूर्ण स्वराज्य का जुलूस निकल रहा था। कुछ युवक, कुछ बूढ़े, कुछ बालक झंडियाँ और झंडे लिए वंदे मारतम् गाते हुए माल के सामने से निकले। दोनों तरफ दर्शकों की दीवारें खड़ी थीं, मानों उन्हें इस जत्थे से कोई सरोकार नहीं है, मानो यह कोई तमाशा है और उनका काम केवल खड़े-खड़े देखना है।

शंभूनाथ ने दुकान की पटरी पर खड़े होकर अपने पड़ोसी दीनदयाल से कहा, सब-के-सब काल के मुँह में जा रहे हैं। आगे सवारों का दल मार-मारकर भगा देगा।

दीनदयाल ने कहा, महात्माजी भी सठिया गए हैं। जुलूस निकालने से स्वराज्य मिल जाता, तो अब तक कब का मिल गया होता। और जुलूस में हैं कौन लोग? देखो, आवारा लड़के, सिर-फिरे। शहर का कोई बड़ा आदमी नहीं।

मैकू चट्टियों और स्लीपरो की माला गरदन में लटकाए खड़ा था। इन दोनों सेठों की बातें सुनकर हँसा।

शंभू ने पूछा, 'क्यों हँसे मैकू? आज रंग चोखा मालूम होता है।'

मैकू—हँसा इस बात पर, जो तुमने कही कि कोई बड़ा आदमी जुलूस में नहीं है। बड़े आदमी क्यों जुलूस में आने लगे? इन्हें इस राज में कौन आराम नहीं है? बंगलों और महलों में रहते हैं, मोटरों पर घूमते हैं, साहबों के साथ दावतें खाते हैं, कौन तकलीफ है? मर तो हम लोग रहे हैं, जिन्हें रोटियों का ठिकाना नहीं। इस बखत कोई टेनिस खेलता होगा, कोई चाय पीता होगा, कोई ग्रामोफोन लिए गाना सुनता होगा, कोई पारिक की सैर करता होगा, यहाँ आँ पुलिस के कोड़े खाने के लिए? तुमने भली कही।

शंभू—तुम ये बातें क्यों समझोगे मैकू! जिस काम में चार बड़े आदमी अगुआ होते हैं, उसकी सरकार पर भी धाक बैठ जाती है। आवारा लड़कों की गौल भला, हाकिमों की निगाह में क्या जँचेगी?

मैकू ने ऐसी दृष्टि से देखा, जो कह रही थी, इन बातों के समझने का ठेका कुछ तुम्हीं ने नहीं लिया है, और बोला, बड़े आदमी को हमीं लोग बनाते-बिगाड़ते हैं, या कोई और? कितने ही लोग जिन्हें कोई पूछता भी न था, हमने ही बनाए बड़े आदमी, बन गए और अब मोटरों पर निकलते हैं और हमें नीच समझते हैं। यह लोगों की तकदीर की खूबी है कि जिसकी ज़रा बढ़ती हुई और उसने हमसे आँखें फेरीं। हमारा बड़ा आदमी तो वही है, जो लँगोटी बाँधे नंगे पाँव घूमता है, जो हमारी दशा को सुधारने के लिए अपनी जान हथेली पर लिए फिरता है। और हमें किसी बड़े आदमी की परवाह नहीं है। सच पूछो तो इन बड़े आदमियों ने ही हमारी मिट्टी खराब कर रखी है। इन्हें सरकार ने कोई अच्छी-सी जगह दे दी, बस उसका दम भरने लगे।

दीनदयाल—नया दारोगा बड़ा जल्लाद है। चौरस्ते पर पहुँचते ही हंटर लेकर पिल पड़ेगा। फिर देखना, सब कैसे दुम दबाकर भागते हैं। मजा आएगा।

जुलूस स्वाधीनता के नशे में चूर चौरस्ते पर पहुँचा तो देखा, आगे सवारों और सिपाहियों का एक दस्ता रास्ता रोके खड़ा है।

सहसा दारोगा बीरबल सिंह बढ़कर जुलूस के सामने आ गए और बोले—तुम लोगों को आगे आने का हुक्म नहीं है।

जुलूस के बूढ़े नेता, इब्राहीम अली ने आगे बढ़कर कहा—मैं आपको इत्मीनान दिलाता हूँ, किसी किस्म का दंगा-फसाद न होगा। हम दुकान लूटने या मोटरें तोड़ने नहीं निकले हैं। हमारा मकसद इससे कहीं ऊँचा है।

बीरबल—मुझे यह हुक्म है कि जुलूस यहाँ से आगे न आने पाए।

इब्राहीम—आप अपने अफसरों से ज़रा पूछ न लें!

बीरबल—मैं इसकी कोई ज़रूरत नहीं समझता।

इब्राहीम—तो हम लोग यहीं बैठते हैं। जब आप लोग चले जाएँगे तो हम निकल जाएँगे।

बीरबल—यहाँ खड़े होने का भी हुक्म नहीं है। तुमको वापस जाना पड़ेगा।

इब्राहीम ने गंभीर भाव से कहा—वापस तो हम न जाएँगे। आपको या किसी को भी हमें रोकने का कोई हक नहीं है। आप अपने सवारों, संगीनों और बंदूकों के जोर से हमें रोकना चाहते हैं, रोक लीजिए, मगर आप हमें लौटा नहीं सकते। न जाने वह दिन कब आएगा, जब हम, हमारे भाईबंद ऐसे हुक्मों की तामील करने से साफ़ इंकार कर देंगे, जिनकी मंशा महज कौम को गुलामी की जंजीर में जकड़े रखना है।

बीरबल ग्रेजुएट था। उसका बाप सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस था। उसकी नस-नस में रौब भरा हुआ था। अफसरों की दृष्टि में उसका बड़ा सम्मान था। खासा गोरा-चिट्ठा नीली आँखें और भूरे बालों वाला तेजस्वी पुरुष था। शायद जिस वक्त्त वह कोट पहनकर ऊपर से हैट लगा लेता है, तो यह भूल जाता है कि मैं भी यहीं का रहने वाला हूँ। शायद वह अपने को राज्य करने वाली जाति का अंग समझने लगता था। मगर इब्राहीम के शब्दों में जो तिरस्कार भरा हुआ था, उसने ज़रा देर के लिए उसे लज्जित कर दिया। पर मुआमला नाजुक था। जुलूस को रास्ता दे देता है, तो जवाब तलब हो जाएगा, वहीं खड़ा रहने देता है तो यह सब एक न जाने कब तक खड़े रहें, इस संकट में पड़ा हुआ था कि उसने डी.एस.पी. को घोड़े पर आते देखा। अब सोच-विचार का समय न था। यह मौका था कारगुज़ारी दिखाने का। उसने कमर से बेटन लिया और घोड़े को एड़ लगकर जुलूस पर चढ़ाने लगा। उसे देखते ही सवारों ने भी घोड़ों को जुलूस पर चढ़ाना शुरू कर दिया। इब्राहीम दारोगा के घोड़े के सामने खड़ा था। उसके सिर पर एक बेटन ऐसे ज़ोर से पड़ा कि उसकी आँखें तिलमिला गईं, खड़ा न रह सका। सिर पकड़कर बैठ गया। उसी वक्त्त दारोगा जी के घोड़े ने दोनों पाँव उठाए और ज़मीन पर बैठा हुआ इब्राहीम उसके टापोँ के नीचे आ गया। जुलूस अभी तक शांत खड़ा था। इब्राहीम को गिरते देखकर कई आदमी उसे उठाने के लिए लपके, मगर कोई आगे न बढ़ सका। उधर सवारों के डंडे बड़ी निर्दयता से पड़ रहे थे। लोग हाथों पर डंडों को

रोकते थे और अविचलित रूप से खड़े थे। हिंसा के भावों में प्रवाहित न हो जाना, उनके लिए प्रतिक्षण कठिन होता जाता था। जब आघात और अपमान ही सहना है, फिर हम भी इस दीवार को पार करने की क्यों न चेष्टा करें? लोगों को खयाल आया, शहर के लाखों आदमियों की निगाहें हमारी तरफ़ लगी हुई हैं। यहाँ से यह डंडा खाकर हम लौट जाएँ, तो फिर किस मुँह से आज़ादी का नाम लेंगे, मगर प्राण-रक्षा के लिए भागने का किसी को ध्यान भी न आता था। यह पेट के भक्तों, किराए के टट्टुओं का दल न था। कितनों ही के सिरों का खून जारी था, कितनों ही के हाथ जख्मी हो गए थे। एक हल्ले में ये लोग सवारों की सफ़ों की चीर सकते थे, मगर पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं, सिद्धांत की, धर्म की, आदर्श की।

दस-बारह मिनट तक यों ही डंडों की बौछार होती रही और लोग शांत खड़े रहे।

इस मार-धाड़ की खबर एक क्षण में बाज़ार में जा पहुँची। इब्राहीम घोड़े से कुचल गए, कई आदमी जख्मी हो गए, कई के हाथ टूट गए, मगर न वे लोग पीछे फिरते हैं और न पुलिस उन्हें आगे जाने देती है।

मैकू ने उत्तेजित होकर कहा—हम भी चलते हैं भाई, देखी जाएगी।

शंभू एक मिनट तक मौन खड़ा रहा, एकाएक उसने भी दुकान बढ़ाई और बोला—एक दिन तो मरना ही है, जो कुछ होना है, हो। आखिर वे लोग सभी के लिए तो जान दे रहे हैं। देखते-देखते अधिकांश दुकानें बंद हो गईं। वे लोग, जो दस मिनट पहले तमाशा देख रहे थे, इधर-उधर से दौड़ पड़े और हज़ारों आदमियों का विराट् दल घटना-स्थल की ओर चला। यह उन्मत्त, हिंसामद से भरे हुए मनुष्यों का समूह था, जिसे सिद्धांत और आदर्श की परवाह न थी। जो कुछ करने के लिए ही नहीं, मरने के लिए भी तैयार थे। कितनों ही के हाथों में लाठियाँ थीं, कितने ही जेबों में पत्थर भरे हुए थे। न कोई किसी से कुछ बोलता था, न पूछता था। बस, सब-के-सब मन में एक दृढ़ संकल्प किए लपके चले जा रहे थे। मानो कोई घटा उमड़ी चली आती हो।

इस दल को दूर से देखते ही सवारों में कुछ हलचल पड़ी। बीरबल सिंह के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। डी.एस.पी. ने अपनी मोट आगे बढ़ाई। शांति और अहिंसा के व्रतधारियों पर डंडे बरसाना और बात थी, एक उन्मत्त दल से मुकाबला करना दूसरी बात। सवार और सिपाही पीछे खिसक गए।

इब्राहीम की पीठ पर घोंटे ने टाप रख दी। वह अचेत ज़मीन पर पड़े थे। इन आदमियों का शोरगुल सुनकर आप-ही-आप उनकी आँखें खुल गईं। एक युवक को इशारे से बुलाकर कहा, 'क्यों कुछ लोग शहर से आ रहे हैं?'

कैलाश ने उस बढ़ती हुई घटा की ओर देखकर कहा—जी हाँ, हज़ारों आदमी हैं।

इब्राहीम—तो अब खैरियत नहीं है। झंडा लौटा दो। हमें फौरन लौट चलना चाहिए, नहीं तूफ़ान मच जाएगा। हमें अपने भाइयों से लड़ाई नहीं करनी है। फौरन लौट चलो।

यह कहते हुए उन्होंने उठने की चेष्टा की, मगर उठ न सके।

इशारे की देर थी। संगठित सेना की भाँति लोग हुक्म पाते ही पीछे फिर गए। झंडियों के बाँसों, साफ़ों और रूमालों से चटपट एक स्टेचर तैयार हो गया। इब्राहीम को लोगों ने उस पर

लिटा दिया और पीछे फिरे, मगर क्या वह परास्त हो गए थे? अगर कुछ लोगों को उन्हें परास्त मानने में ही संतोष हो, तो हो, लेकिन वास्तव में उन्होंने एक युगांतरकारी विजय प्राप्त की थी। वे जानते थे, हमारा संघर्ष अपने ही भाइयों से है, जिनके हित परिस्थितियों के कारण हमारे हितों से भिन्न हैं। उनसे बैर नहीं करना है। फिर, वह यह भी नहीं चाहते थे कि शहर में लूट और दंगे का बाज़ार गर्म हो जाए और हमारे धर्म-युद्ध का अंत लूटी हुई दुकानों और टूटे हुए सिर से हो। उनकी विजय का सबसे उज्ज्वल चिह्न यह था कि उन्होंने जनता की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। वही लोग जो पहले उन पर हँसते थे, उनका धैर्य और साहस देखकर उनकी सहायता के लिए निकल पड़े थे। मनोवृत्ति का यह परिवर्तन ही हमारी असली विजय है। हमें किसी से लड़ाई करने की ज़रूरत नहीं, हमारा उद्देश्य केवल जनता की सहानुभूति प्राप्त करना है, उनकी मनोवृत्तियों को बदल देना है। जिस दिन हम इस लक्ष्य पर पहुँच जाएँगे, उसी दिन स्वराज्य-सूर्य उदय होगा।

तीन दिन गुज़र गए थे। बीरबलसिंह अपने कमरे में बैठे चाय पी रहे थे और उनकी पत्नी मिट्टन बाई शिशु को गोद में लिए सामने खड़ी थीं।

बीरबलसिंह ने कहा—मैं क्या करता उस वक़््त। पीछे डी.एस.पी. खड़ा था। अगर उन्हें रास्ता दे देता, तो अपनी जान मुसीबत में फँसती।

मिट्टन बाई ने सिर हिलाकर कहा—तुम कम-से-कम इतना तो कर ही सकते थे कि उन पर डंडे न चलाने देते। तुम्हारा काम आदमियों पर डंडे चलाना है? तुम ज़्यादा-से-ज़्यादा उन्हें रोक सकते थे। कल को तुम्हें अपराधियों को बेंत लगाने का काम दिया जाए, तो शायद तुम्हें बड़ा आनंद आएगा, क्यों?

बीरबलसिंह ने खिसियाकर कहा—तुम तो बात नहीं समझती हो।

मिट्टन बाई—मैं खूब समझती हूँ। डी. एस. पी. पीछे खड़ा था। तुमने सोचा होगा, ऐसी कारगुज़ारी दिखाने का अवसर शायद फिर कभी मिले या न मिले। क्या समझते हो, उस दल में कोई भला आदमी न था? उसमें कितने आदमी ऐसे थे, जो तुम्हारे जैसे नौकर रख सकते हैं? विद्या में तो शायद अधिकांश तुमसे बड़े हुए होंगे, मगर तुम उन पर डंडे चला रहे थे और उन्हें घोड़ों से कुचल रहे थे, वाह री जवांमर्दी!

बीरबल ने बेहयाई की हँसी के साथ कहा—डी. एस. पी. ने मेरा नाम नोट कर लिया है, सच।

दारोगा जी ने समझा था, यह सूचना देकर वह मिट्टन बाई को खुश कर देंगे। सज्जनता और भलमनसी आदि ऊपर की बातें हैं, दिल से नहीं जबान से कही जाती हैं। स्वार्थ दिल की गहराइयों में बैठा होता है। वही गंभीर विचार का विषय है।

मगर मिट्टन बाई के मुख पर हर्ष की कोई रेखा नज़र आई, ऊपर की बातें शायद गहराइयों तक पहुँच गई थीं। बोलीं—ज़रूर कर लिया होगा और शायद तुम्हें जल्द तरक्की भी मिल जाए, मगर बेगुनाहों के खून से हाथ रंगाकर तरक्की पाई, तो क्या पाई। यह तुम्हारी कारगुज़ारी का इनाम नहीं, तुम्हारे देशद्रोह की कीमत है। तुम्हारी कारगुज़ारी का इनाम तो तब मिलेगा, जब तुम किसी खून को खोज निकालोगे, किसी डूबते हुए आदमी को

बचा लोगे।

एकाएक एक सिपाही ने बरामदे में खड़े होकर कहा, हुजूर, यह लिफाफा लाया हूँ। बीरबल सिंह ने बाहर निकलकर लिफाफा ले लिया और भीतर की सरकारी चिट्ठी निकालकर पढ़ने लगा। पढ़कर उसने मेज़ पर रख दिया।

मिट्टन ने पूछा—क्या तरक्की का परवाना आ गया?

बीरबल ने झेंपकर कहा—तुम तो जानती हो। आज फिर कोई जुलूस निकलने वाला है। मुझे उसके साथ रहने का हुक्म हुआ है।

मिट्टन—कर हाथ दिखाफिर तो तुम्हारी चाँदी है, तैयार हो जाओ। आज फिर वैसे ही शिकार मिलेंगे। खूब बढ़-चढ़कर हाथ दिखाना। डी.एस.पी. भी ज़रूर आएँगे। अब की तुम इंस्पेक्टर हो जाओगे। सच।

बीरबल सिंह ने माथा सिकोड़कर कहा—कभी-कभी तुम बेसिर-पैर की बातें करने लगती हो। मान लो, मैं चुपचाप खड़ा रहूँ, तो क्या नतीजा होगा। मैं नालायक समझा जाऊँगा और मेरी जगह कोई दूसरा आदमी भेज दिया जाएगा। कहीं शुबहा हो गया कि मुझे स्वराज्यवादियों से सहानुभूति है तो कहीं का न रहूँगा। अगर बर्खास्त न हुआ तो लैन की हाजिरी तो हो ही जाएगी। आदमी जिस दुनिया में रहता है, उसी का चलन देखकर काम करता है। मैं बुद्धिमान न सही; पर इतना जनता हूँ कि ये लोग देश और जाति का उद्धार करने के लिए कोशिश कर रहे हैं। यह भी जानता हूँ कि सरकार इस खयाल को कुचल डालना चाहती है। ऐसा गधा नहीं हूँ कि गुलामी की ज़िंदगी पर गर्व करूँ, लेकिन परिस्थिति से मजबूर हूँ।

बाजे की आवाज़ कानों में आई। बीरबल ने बाहर आकर पूछा। मालूम हुआ, स्वराज्य वालों का जुलूस आ रहा है। चटपट वर्दी पहनी, साफा बाँधा और जेब में पिस्तौल रखकर बाहर आए। एक क्षण में घोड़ा तैयार हो गया। कांस्टेबल पहले ही तैयार बैठे थे। सब डबल मार्च करते हुए जुलूस की तरफ चले।

ये लोग डबल मार्च करते हुए कोई पंद्रह मिनट में जुलूस के सामने पहुँच गए। इन लोगों को देखते ही अगणित कंठों से 'वंदे मातरम्' की एक ध्वनि निकली, मानो मेघमंडल में गर्जन का शब्द हुआ हो, फिर सन्नाटा छा गया। उस जुलूस में और इस जुलूस में कितना अंतर था! वह स्वराज्य के उत्सव का जुलूस था, यह एक शहीद के मातम का। तीन दिन के भीषण ज्वर और वेदना के बाद आज उस जीवन का अंत हो गया। जिसने कभी पद की लालसा नहीं की, कभी अधिकार के सामने सिर नहीं झुकाया। उन्होंने मरते-मरते वसीयत की थी कि मेरी लाश को गंगा में नहलाकर दफ़नाया जाए और मेरे मजार पर स्वराज्य का झंडा खड़ा किया जाए। उनके मरने के समाचार फैलते ही सारे शहर पर मातम का पर्दा-सा पड़ गया। जो सुनता था, एक बार इस तरह चौंक पड़ता था जैसे उसे गोली लग गई हो और तुरंत उनके दर्शनों के लिए भागता था। सारे बाज़ार बंद हो गए, इक्कों और ताँगों का कहीं पता न था, जैसे शहर लुट गया हो। देखते-देखते सारा शहर उमड़ पड़ा। जिस वक़््त जनाना उठा, लाख-सवा लाख आदमी साथ थे। कोई आँख ऐसी न थी, जो आँसुओं से लाल

न हो।

बीरबलसिंह अपने कांसटेबलों को पाँच-पाँच गज के फ़ासले पर जुलूस के साथ चलने का हुक्म देकर पीछे गए गए। पिछली सफ़ों में कोई पचास गज़ तक महिलाएँ थीं। दारोगा ने उसकी तरफ़ ताका। पहली ही कतार में मिट्टन बाई नज़र आई। बीरबल को विश्वास न आया। फिर ध्यान से देखा और आँखें फेर लीं, पर उसकी एक चितवन में कुछ ऐसा धिक्कार, कुछ ऐसी लज्जा, कुछ ऐसी व्यथा, कुछ ऐसी घृणा भरी हुई थी कि बीरबल सिंह की देह में सिर से पाँव तक सनसनी-सी दौड़ गई। वह अपनी दृष्टि में कभी इतने हल्के, इतने दुर्बल, इतने जलील न हुए थे।

सहसा एक युवती ने दारोगा जी की तरफ़ देखकर कहा—कोतवाल साहब, कहीं हम लोगों पर डंडे न चला दीजिएगा। आपको देखकर भय हो रहा है।

दूसरी बोली—आपके ही कोई भाई थे, जिन्होंने उस दिन माल के चौराहे पर इस वीर पुरुष पर आघात किए थे।

तीसरी ने कहा—आपके कोई भाई न थे, आप खुद थे।

बीसियों के मुँह से आवाजें निकलीं—अच्छा यह वही महाशय हैं। महाशय, आपको नमस्कार है। यह आप ही की कृपा का फल है कि आज हम भी आपके डंडों के दर्शन के लिए खड़ी हुई हैं।

बीरबल ने मिट्टनबाई की ओर आँखों का भाला चलाया पर मुँह से कुछ न बोले।

एक तीसरी महिला ने फिर कहा—हम एक जलसा करके आपको जयमाला पहनाएँगे और आपका यशगान करेंगे।

चौथी ने कहा—आप बिलकुल अँग्रेज़ मालूम होते हैं, जभी इतने गोरे हैं।

एक बुढ़िया ने आँखें चढ़ाकर कहा—मेरी कोख में ऐसा बालक जन्मा होता, तो उसकी गरदन मरोड़ देती।

एक युवती ने उनका तिरस्कार करके कहा—आप भी खूब कहती हैं, माता जी, कुत्ते तक तो नमक का हक अदा करते हैं, यह तो आदमी है।

बुढ़िया ने झल्लाकर कहा—पेट के गुलाम। हाय पेट! हाय पेट!

इस पर कई स्त्रियों ने बुढ़िया को आड़े हाथों लिया और वह बेचारी लज्जित होकर बोली—अरे, मैं कुछ कहती थोड़े ही हूँ, मगर ऐसा आदमी भी क्या, जो स्वार्थ के पीछे अंधा हो जाए।

बीरबल सिंह अब और न सुन सके। घोड़ा बढ़ाकर जुलूस के कई गज़ पीछे चले गए। मर्द लज्जित करता है, तो हमें क्रोध आता है, स्त्रियाँ लज्जित करती हैं, तो ग्लानि उत्पन्न होती है। बीरबल सिंह की इस वक्ता इतनी हिम्मत न थी कि फिर उन महिलाओं के सामने जाते। अपने अफ़सरों पर क्रोध आया। मुझी को बार-बार क्यों इन कामों पर तैनात किया जाता है? और लोग भी तो हैं, उन्हें क्यों नहीं लाया जाता? क्या मैं सबसे गया-बीता हूँ, क्या मैं ही सबसे भावशून्य हूँ?

मिट्टो इस वक्ता मुझे दिल में कायर और नीच समझ रही होगी। शायद इस वक्ता मुझे

कोई मार डाले, तो वह ज़बान भी न खोलेगी। शायद मन में प्रसन्न होगी कि अच्छा हुआ। अभी कोई जाकर साहब से कह दे कि बीरबलसिंह की स्त्री जुलूस में निकली थी तो कहीं का न रहूँ। मिट्टी जानती है, समझती है, फिर भी निकल खड़ी हुई। मुझसे पूछा तक नहीं। कोई फिक्र नहीं है न, जभी ये बातें सूझती हैं। वहाँ सभी बेफ़िक्र हैं, कॉलेजों और स्कूलों के लड़के, मजदूर, पेशेवर, उन्हें क्या चिंता। मरण तो हम लोगों का है, जिनके बाल-बच्चे हैं, और मान-मर्यादा का ध्यान है। सबकी सब मेरी तरफ़ कैसे घूर रही थीं, मानो खा जाएँगी।

जुलूस शहर की मुख्य सड़कों से गुज़रता हुआ चला जा रहा था। दोनों ओर छतों पर, छज्जों पर, जंगलों पर, वृक्षों पर, दर्शकों की दीवारें-सी खड़ी थीं। बीरबलसिंह को आज उनके चेहरे पर एक नई स्फूर्ति, एक नया उल्लास, एक नया गर्व झलकता हुआ मालूम होता था। स्फूर्ति थी वृद्धों के चेहरों पर, उत्साह युवकों और गर्व रमणियों के। यह स्वराज्य के पथ पर चलने का उल्लास था। अब उनकी यात्रा का लक्ष्य अज्ञात न था, पथ-भ्रष्टों की भाँति इधर-उधर भटकना न था, दलितों की भाँति सिर झुकाकर रोना न था। स्वाधीनता का सुनहला शिखर सुदूर आकाश में चमक रहा था। ऐसा जान पड़ता था, लोगों के बीच के नालों और जंगलों की परवाह नहीं है, सब उस सुनहले लक्ष्य पर पहुँचने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

ग्यारह बजते-बजते जुलूस नदी के किनारे पर पहुँचा, जनाजा उतारा गया और लोग शव को गंगास्नान कराने के लिए चले। उसके शीतल, शांत, पीले मस्तक पर लाठी की चोट साफ़ नज़र आ रही थी। रक्त जमकर काला हो गया था। सिर के बड़े-बड़े बाल खून जम जाने से किसी चित्रकार की तूलिका की भाँति चिपक गए थे। कई हज़ार आदमी इस शहीद के अंतिम दर्शन के लिए मंडल बाँधकर खड़े हो गए थे। बीरबलसिंह पीछे घोड़े पर सवार खड़े थे। लाठी की चोट उन्हें भी नज़र आई। उनकी आत्मा ने ज़ोर से धिक्कारा। वह शव की ओर न ताक सके। मुँह फेर लिया। जिस मनुष्य के दर्शनों के लिए, जिसके चरणों की रज मस्तक पर लगाने के लिए लाखों आदमी विकल हो रहे हैं, उसका मैंने इतना अपमान किया। उनकी आत्मा इस समय स्वीकार कर रही थी कि उस निर्दय प्रहार में कर्तव्य के भाव का लेश भी न था। केवल स्वार्थ था, कारगुज़ारी दिखाने की हवस और अफ़सरों को खुश करने की लिप्सा। हज़ारों आँखें क्रोध से भरी हुई उनकी ओर देख रही थीं, पर वह सामने ताकने का साहस न कर सकते थे।

एक कांस्टेबल ने आकर प्रशंसा की—हुज़ूर का हाथ गहरा पड़ा था। अभी तक खोपड़ी खुली है। सबकी आँखें खुल गईं।

बीरबलसिंह ने उपेक्षा की—मैं इसे अपनी जवांमर्दी नहीं, अपना कमीनापन समझता हूँ।

कांस्टेबल ने फिर खुशामद की—बड़ा सरकश आदमी था, हुज़ूर।

बीरबल ने फिर तीव्र भाव से कहा—चुप रहो! जानते हो सरकश किसे कहते हैं? सरकश वे कहलाते हैं, जो डाके मारते हैं, चोरी करते हैं, खून करते हैं। उन्हें सरकश नहीं कहते, जो देश की भलाई के लिए अपनी जान हथेली पर लिए फिरते हों। हमारी बदनसीबी है कि जिनकी मदद करनी चाहिए उनका विरोध कर रहे हैं, यह घमंड करने और खुश होने की बात नहीं है, शर्म करने और रोने की बात है।



स्नान समाप्त हुआ। जुलूस यहाँ से फिर खाना हुआ।

शव को जब खाक के नीचे सुलाकर लोग लौटने लगे तो दो बज रहे थे। मिट्टनबाई स्त्रियों के साथ-साथ कुछ दूर तक तो आई, पर क्वीस पार्क में आकर ठिठक गई। घर जाने की इच्छा न हुई। वह जीर्ण, आहत, रक्तरंजित शव, मानो उसके अंतस्तल में बैठा उसे धिक्कार रहा था। पति से उसका मन इतना विरक्त हो गया था कि अब उसे धिक्कारने की भी उसकी इच्छा न थी। ऐसे स्वार्थी मनुष्य पर भय के सिवा और किसी चीज़ का असर हो सकता है, इसका उसे विश्वास ही न था।

वह बड़ी देर तक पार्क में घास पर बैठी सोचती रही, पर अपने कर्तव्य का कुछ निश्चय न कर सकी। मैं नैहर जा सकती थी, किंतु वहाँ से महीने-दो-महीने में फिर इसी घर में आना पड़ेगा। नहीं, मैं किसी की आश्रिता न बनूँगी। क्या मैं अपने गुज़र-बसर को नहीं कमा सकती? उसने स्वयं भाँति-भाँति की कठिनाइयों की कल्पना की, पर आज उसकी आत्मा में न जाने इतना बल कहाँ से आ गया था। इन कल्पनाओं को ध्यान में लाना ही उसे अपनी कमज़ोरी मालूम हुई।

सहसा उसे इब्राहीम अली की वृद्धा विधवा का खयाल आया। उसने सुना था कि उसके लड़के-बाले नहीं हैं। बेचारी अकेली बैठी रो रही होगी। कोई तसल्ली देनेवाला भी पास न होगा। वह उनके मकान की ओर चली। पता उसने पहले ही अपने साथ की औरतों से पूछ लिया था। वह दिल में सोचती जाती थी, मैं उनसे कैसे मिलूँगी, उनसे क्या कहूँगी, उनहें किन शब्दों में समझाऊँगी? इन्हीं विचारों में डूबती हुई वह इब्राहीम अली के घर पहुँच गई। मकान एक गली में था, साफ़-सुथरा, लेकिन द्वार पर हसरत बरस रही थी। धड़कते हुए हृदय से अंदर कदम रखा। सामने बरामदे में एक खाट पर एक वृद्धा बैठी थी, जिसके पति ने आज स्वाधीनता की वेदी पर अपना बलिदान किया था। उसके सामने सादे कपड़े पहने हुए एक युवक खड़ा था, आँखों में आँसू भरे वृद्धा से कुछ बातें कर रहा था। मिट्टन उस युवक को देखकर चौंक पड़ी—वह बीरबलसिंह थे।

उसने क्रोधमय आश्चर्य से पूछा—तुम यहाँ कैसे आए?

बीरबलसिंह ने कहा—उसी तरह जैसे तुम आई। अपने अपराध क्षमा कराने आया हूँ।

मिट्टन के गोर मुखड़े पर आज गर्व, उल्लास और प्रेम की जो उज्ज्वल विभूति नज़र आई, वह अकथनीय थी। ऐसा जान पड़ा मानो उसके जन्म-जन्मांतर के क्लेश मिट गए हैं। वह चिंता और माया के बंधनों से मुक्त हो गई है।

## दो बैलों की कथा

जानवरों में गधा सबसे बुद्धिहीन समझा जाता है। हम जब किसी आदमी को पहले दरजे का बेवकूफ़ कहना चाहते हैं तो उसे गधा कहते हैं। गधा समचुच बेवकूफ़ है, या उसके सीधेपन, उसकी निरापद सहिष्णुता ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। गायें सींग मारती हैं, ब्याही हुई गाय तो अनायास ही सिंहनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर है, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ ही जाता है, लेकिन गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहे उस गरीब को मारो, चाहे जैसी खराब सड़ी हुई घास सामने डाल दो, उसके चेहरे पर कभी असंतोष की छाया भी न दिखाई देगी। बैशाख में चाहे एकाध बार कुलेल कर लेता हो; पर हमने तो उसे कभी खुश होते नहीं देखा। उसके चेहरे पर एक स्थायी विषाद स्थायी रूप से छाया रहता है। सुख-दुःख, हानि-लाभ किसी दशा में भी बदलते नहीं देखा। ऋषियों-मुनियों के जितने गुण हैं, वह सभी उसमें पराकाष्ठा को पहुँच गए हैं, पर आदमी उसे बेवकूफ़ कहता है। सदगुणों का इतना अनाचार कहीं नहीं देखा। कदाचित् सीधापन संसार के लिए उपयुक्त नहीं है। देखिए न, भारतवासियों की अफ्रीका में क्यों दुर्दशा हो रही है? क्यों अमेरिका में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचाकर रखते हैं, जी-तोड़ काम करते हैं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करते, चार बातें सुनकर गम खा जाते हैं। फिर भी बदमाश हैं। कहा जाता है, जीवन के आदर्श को नीचा करते हैं। अगर वे ईंट का जवाब पत्थर से देना सीख जाते, तो शायद सभ्य कहलाने लगते। जापान की मिसाल सामने है। एक ही विजय ने उसे संसार की सभ्य जातियों में गण्य बना दिया।

लेकिन गधे का एक छोटा भाई और भी है, जो उससे कुछ ही कम गधा है और वह है 'बैल'। जिस अर्थ में हम 'गधा' का प्रयोग करते हैं, कुछ उसी से मिलते-जुलते अर्थ में बछिया के ताऊ का प्रयोग भी करते हैं। कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफ़ों में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे, मगर हमारा विचार ऐसा नहीं। बैल कभी-कभी मारता भी है। कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने में आता है। और भी कई रीतियों से वह अपना असंतोष प्रकट कर देता है; अतएव उसका स्थान गधे से नीचा है।

झूरी काछी के दोनों बैलों के नाम हैं हीरा और मोती। दोनों पछाई जाति के थे। देखने में सुंदर, काम में चौकस, डील में ऊँचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाई-चारा हो गया था। दोनों आमने-सामने या आस-पास बैठे हुए एक-दूसरे से मूक भाषा में विचार-विनिमय करते थे। एक दूसरे के मन की बात कैसे समझ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमें कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करने वाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक-दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते। कभी-कभी दोनों सींग

भी मिला लिया करते थे, विग्रह के भाव से नहीं, केवल विनोद के भाव से, आत्मीयता के भाव से; जैसे दोस्ती में घनिष्ठता होते ही धौल-धप्पा होने लगता है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुसफुसी, कुछ हल्की-सी रहती है, जिस पर ज़्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस वक्ता ये दोनों बैल हल या गाड़ी में जोत दिए जाते थे और गरदन हिला-हिलाकर चलते, तो हर एक की यही चेष्टा होती थी कि ज़्यादा बोझ मेरी ही गरदन पर रहे। दिन-भर के बाद दोपहर या संध्या को दोनों खुलते, तो एक-दूसरे को चाट-चूटकर अपनी थकान मिटा लिया करते। नाँद में खली-भूसा पड़ जाने के बाद दोनों साथ उठते, साथ नाँद में मुँह डालते और साथ ही बैठते थे। एक मुँह हटा लेता तो दूसरा भी हटा लेता था।

संयोग की बात, झूरी ने एक बार गोई को ससुराल भेज दिया। बैलों को क्या मालूम, वे क्यों भेजे जा रहे हैं। समझे मालिक ने हमें बेच दिया।

अपना यों बेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या बुरा, कौन जाने; पर झूरी के साले गया को घर तक गोई ले जाने में दाँतों पसीना आ गया। पीछे से हाँकता तो दोनों दाँ-बाँ भागते, पगहिया पकड़कर नीचे करके हुंकारते। अगर ईश्वर ने उन्हें वाणी दी होती, तो झूरी से पूछते, तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो? हमने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। अगर इतनी मेहनत से काम न चलता था तो और काम लेते। हमें तो तुम्हारी चाकरी में मर जाना कबूल था। हमने दाने-चारे की शिकायत नहीं की। तुमने जो कुछ खिलाया, वह सिर झुकाकर खा लिया, फिर तुमने हमें इस जालिम के हाथ क्यों बेच दिया?

संध्या समय दोनों बैल अपने नए स्थान पर पहुँचे। दिन-भर के भूखे थे; लेकिन जब नाँद में लगाए गए, तो एक ने भी उसमें मुँह न डाला। दिल भारी हो रहा था। जिसे उन्होंने अपना घर समझ रखा था वह आज उनसे छूट गया था। यह नया घर, नया गाँव, नए आदमी सब उन्हें बेगाने-से लगे।

दोनों ने अपनी मूक भाषा में सलाह की, एक-दूसरे को कनखियों से देखा और लेट गए। जब गाँव में सोता पड़ गया, तो दोनों ने ज़ोर मारकर पगहे तुड़ा डाले और घर की तरफ चले। पगहे बहुत मजबूत थे। अनुमान नहीं हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा। पर इन दोनों में इस समय दूसरी शक्ति आ गई थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गईं।

झूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा कि दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदन में आधा-आधा गराँव लटक रहा है। घुटने तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोहमय स्नेह झलक रहा है।

झूरी बैलों को देखकर स्नेह से गदगद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुंबन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गए और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूतपूर्व न होने पर भी महत्वपूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पशुवीरों को अभिनंदन-पत्र देना चाहिए। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़, कोई चोकर, कोई भूसी।

एक बालक ने कहा—ऐसे बैल किसी के पास न होंगे।

दूसरे ने समर्थन किया—इतनी दूर से अकेले चले आए।  
तीसरे ने कहा—बैल नहीं हैं वे, उस जन्म के आदमी हैं।  
इसका प्रतिवाद करने का किसी को साहस नहीं हुआ।  
झूरी की पत्नी ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली-कैसे नमकहराम बैल हैं कि एक दिन भी वहाँ काम न किया। भाग खड़े हुए।

झूरी अपने बैलों का आक्षेप न सुन सका—नमकहराम क्यों हैं? चारा-दाना दिया न होगा तो क्या करते?

स्त्री ने रौब के साथ कहा—बस, तुम्हीं तो बैलों को खिलाना जानते हो, और सभी पानी पिला-पिलाकर रखते हैं।

झूरी ने चिढ़ाया-चारा मिलता तो क्यों भागते?

स्त्री चिढ़ी-भागो इसलिए कि वे लोग तुम जैसे बुद्धुओं की तरह बैलों को सहलाते नहीं। खिलाते हैं तो रगड़कर जोतते भी हैं। ये दोनों ठहरे कामचोर, भाग निकले। अब देखूँ कहाँ से खली और चोकर मिलता है? सूखे भूसे के सिवा कुछ न दूँगी, खाएँ चाहे मरें।

वही हुआ। मजदूर को कड़ी ताकीद कर दी गई कि बैलों को खाली सूखा भूसा दिया जाए।

बैलों ने नाँद में मुँह डाला तो फीका-फीका। न कोई चिकनाहट, न कोई रस। क्या खाएँ। आशा-भरी आँखों से द्वार की ओर ताकने लगे। झूरी ने मजदूर से कहा—थोड़ी-सी खली क्यों नहीं डाल देता रे?

‘मालकिन मुझे मार ही डालेंगी।’

‘चुराकर डाल आ।’

‘ना दादा, पीछे से तुम भी उन्हीं की-सी कहोगे।’

दूसरे दिन झूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अब की उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना चाहा, पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज़्यादा सहनशील था।

संध्या समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों से बाँधा और कल की शरारत का मज़ा चखाया। फिर वही सूखा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी, सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। झूरी उन्हें फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे। यहाँ पर मार पड़ी। आहत सम्मान की व्यथा तो थी ही, उस पर मिला सूखा भूसा। नाँद की तरफ़ आँख तक न उठायी।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता; पर इन दोनों ने जैसे पाँव उठाने की कसम खा ली थी। वह मारते-मारते थक गया; पर दोनों ने पाँव न उठाया। एक बार जब निर्दयी ने हीरा के नाक में खूब डंडे जमाए तो मोती का गुस्सा काबू से बाहर हो गया। हल लेकर भागा। हल, रस्सी, जुआ, सब टूट-टाटकर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होतीं तो

दोनों पकड़ाई में न आते।

हीरा ने मूक भाषा में कहा—भागना व्यर्थ है।

मोती ने उसी भाषा में उत्तर दिया—तुम्हारी तो इसने जान ही ले ली थी। अबकी बार मार पड़ेगी।

‘पड़ने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहाँ तक बचेंगे?’

‘गया दो आदमियों के साथ दौड़ा आ रहा है। दोनों के हाथ में लाठियाँ हैं।’

मोती बोला—कहो तो दिखा दूँ कुछ मज़ा मैं भी। लाठी लेकर आ रहा है!

हीरा ने समझाया—नहीं भाई, खड़े हो जाओ।

‘मुझे मारेगा, तो मैं एक-दो को गिरा दूँगा।’

‘नहीं, हमारी जाति का यह धर्म नहीं।’

मोती दिल में ऐंठकर रह गया। गया आ पहुँचा और दोनों को पकड़कर ले चला। कुशल हुई कि इस वक्त्रित मार-पीट न की, नहीं मोती भी पलट पड़ता। उसके तेवर देखकर सहम गया और उसके सहायक समझ गए कि इस वक्त्रित टाला जाना ही मसलहत है।

आज दोनों के सामने फिर वही सूखा भूसा लाया गया। दोनों चुपचाप खड़े रहे। घर के लोग भोजन करने लगे। उसी वक्त्रित एक छोटी-सी लड़की दो रोटियाँ लेकर निकली, और दोनों के मुँह में देकर चली गई। उस एक रोटि से इनकी भूख तो क्या शांत होती; पर दोनों के हृदय को मानो भोजन मिल गया। यहाँ भी किसी सज्जन का वास है। लड़की भैरों की थी। उसकी माँ मर चुकी थी। सौतेली माँ उसे मारती थी, इसलिए इन बैलों से उसे एक प्रकार की आत्मीयता हो गई थी।

दोनों दिन-भर जोते जाते, डंडे खाते। शाम को थान पर बाँध दिए जाते और रात को वही बालिका उन्हें दो रोटियाँ खिला जाती। प्रेम के इस प्रसाद की यह बरकत थी कि दो-दो गाल सूखा भूसा खाकर भी दोनों दुर्बल न होते थे, मगर दोनों की आँखों में, रोम-रोम में विद्रोह भरा हुआ था।

एक दिन मोती ने मूक भाषा में कहा—अब तो सहा नहीं जाता हीरा।

‘क्या करना चाहते हो?’

‘एकाध को सींगों पर उठाकर फेंक दूँगा।’

‘लेकिन जानते हो वह प्यारी लड़की, जो हमें रोटियाँ खिलाती है, उसी की लड़की है, जो इस घर का मालिक है। यह बेचारी अनाथ हो जाएगी।’

‘तो मालकिन को न फेंक दूँ। वही तो उस लड़की को मारती है।’

‘लेकिन औरत जात पर सींग चलाना मना है, वह भूले जाते हो।’

‘तुम तो किसी तरह निकलने ही नहीं देते। तो आओ, आज तुड़ाकर भाग चलो।’

‘हाँ, यह मैं स्वीकार करता हूँ; लेकिन इतनी मोटी रस्सी टूटेगी कैसे?’

‘इसका उपाय है। पहले रस्सी को थोड़ा-सा चबा लो। फिर एक झटके में टूट जाती है।’

रात को जब बालिका रोटियाँ खिलाकर चली गई, तो दोनों रस्सियाँ चबाने लगे; मोटी रस्सी मुँह में न जाती थी। बेचारे बार-बार ज़ोर लगाकर रह जाते।

सहसा घर का द्वार खुला और वही लड़की निकली। दोनों सिर झुकाकर उसका हाथ चाटने लगे। दोनों की पूछें खड़ी हो गई। उसने उनके माथे सहलाए और बोली-खोले देती हूँ। चुपके से भाग जाओ, नहीं यहाँ के लोग मार डालेंगे। आज घर में सलाह हो रही है कि इनकी नाकों में नाथ डाल दी जाए।

उसने गराँव खोल दिया, पर दोनों चुपचाप खड़े रहे।

मोती ने अपनी भाषा में पूछा—अब चलते क्यों नहीं?

हीरा ने कहा—चलें तो; लेकिन कल इस अनाथ पर आफ़त आएगी। सब इसी पर संदेह करेंगे। सहसा बालिका चिल्लाई, दोनों फूफावाले बैल भागे जा रहे हैं। ओ दादा! दोनों बैल भागे जा रहे हैं। जल्दी दौड़ो।

गया हड़बड़ाकर भीतर से निकला और बैलों को पकड़ने चला। वह दोनों भागे। गया ने पीछा किया। वह और भी तेज़ हुए। गया ने शोर मचाया। फिर गाँव के कुछ आदमियों को साथ लेने के लिए लौटा। दोनों मित्रों को भागने का मौका मिल गया। सीधे दौड़ते चले गए। यहाँ तक कि मार्ग का ज्ञान न रहा। जिस परिचित मार्ग से आए थे, उसका यहाँ पता न था। नए-नए गाँव मिलने लगे। तब दोनों एक खेत के किनारे खड़े होकर सोचने लगे, अब क्या करना चाहिए।

हीरा ने कहा—मालूम होता है, राह भूल गए।

‘तुम भी तो बेतहाशा भागे। वहीं उसे मार गिराना था।’

‘उसे मार गिराते, तो दुनिया क्या कहती? वह अपना धर्म छोड़ दें, लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़ें!’

दोनों भूख से व्याकुल हो रहे थे। खेत में मटर खड़ी थी। चरने लगे। रह-रहकर आहट ले लेते थे, कोई आता तो नहीं।

जब पेट भर गया, दोनों ने आजादी का अनुभव किया, तो मस्त होकर उछलने-कूदने लगे। पहले दोनों ने डकार ली। फिर सींग मिलाए और एक-दूसरे को ठेलने लगे। मोती ने हीरा को कई कदम पीछे हटा दिया, यहाँ तक कि वह खाई में गिर गया। तब उसे भी क्रोध आया। सँभलकर उठा और फिर मोती से भिड़ गया। मोती ने देखा, खेल में झगड़ा हुआ चाहता है, तो किनारे हट गए।

अरे! वह क्या! कोई साँड़ डौंकता हुआ चला आ रहा है। हाँ, साँड़ ही है। वह सामने आ पहुँचा। दोनों मित्र बगलें झाँक रहे हैं। साँड़ पूरा हाथी है। उससे भिड़ना जान से हाथ धोना है; लेकिन न भिड़ने पर तो जान बचती नहीं नजर आती। इन्हीं की तरफ आ रहा है। कितनी भयंकर सूरत है!

मोती ने मूक भाषा में कहा—बुरे फँसे! जान कैसे बचेगी? कोई उपाय सोचो।

हीरा ने चिंतित स्वर में कहा—अपने घमंड में भूला हुआ है। आरजू-विनती न सुनेगा।

‘भाग क्यों न चलें?’

‘भागना कायरता है।’

‘तो फिर यहीं मरो। बंदा तो नौ-दो ग्यारह होता है।’

‘और जो दौड़ाए? ’

‘तो फिर कोई उपाय सोचो जल्द! ’

‘उपाय यही है कि उस पर दोनों जने एक साथ चोट करें। मैं आगे से रगदता हूँ तुम पीछे से रगदो, दोहरी मार पड़ेगी, तो भाग खड़ा होगा। ज्यों ही मेरी ओर झपटे तुम बगल से उसके पेट में सींग घुसेड़ देना। जान जोखिम है, पर दूसरा उपाय नहीं है।’

दोनों मित्र जान हथेलियों पर लेकर लपके। साँड़ को कभी संगठित शत्रुओं से लड़ने का तजुरबा न था। वह तो शत्रु से मल्लयुद्ध करने का आदी था। ज्यों ही हीरा पर झपटा, मोती ने पीछे से दौड़ाया। साँड़ उसकी तरफ मुड़ा तो हीरा ने रगदा। साँड़ चाहता था कि एक-एक करके दोनों को गिरा ले, पर ये दोनों उस्ताद थे। उसे यह अवसर न देते थे। एक बार साँड़ झल्लाकर हीरा का अंत कर देने के लिए चला कि मोती ने बगल से आकर उसके पेट में सींग भोंक दिया। साँड़ क्रोध में आकर पीछे फिरा तो हीरा ने दूसरे पहलू में सींग भोंक दिया। साँड़ क्रोध में आकर पीछे फिरा तो हीरा ने दूसरे पहलू में सींग चुभो दिया। आखिर बेचारा जख्मी होकर भाग, और दोनों ने दूर तक पीछा किया। यहाँ तक कि साँड़ बेदम होकर गिर पड़ा। तब दोनों ने उसे छोड़ दिया।

दोनों मित्र विजय के नशे में झूमते चले जा रहे थे।

मोती ने अपनी सांकेतिक भाषा में कहा—मेरा जी चाहता था कि बच्चा को मार ही डालूँ।

हीरा ने तिरस्कार किया-गिरे हुए बैरी पर सींग नहीं चलना चाहिए।

‘यह सब ढोंग है। बैरी को ऐसा मारना चाहिए कि फिर न उठे।’

‘अब कैसे पहुँचेंगे, यह सोचो।’

‘पहले कुछ खा लें, तब सोचें।’

सामने मटर का खेत था ही। मोती उसमें घुस गया। हीरा मना करता रहा, पर उसने एक न सुनी। अभी दो ही चार ग्रास खाए थे कि दो आदमी लाठियाँ लिए दौड़ पड़े और दोनों मित्रों को घेर लिया। हीरा मेड़ पर था, निकल गया। मोती सींचे हुए खेत में था। उसके खुर कीचड़ में धँसने लगे। भाग न सका। पकड़ लिया गया। हीरा ने देखा, संगी संकट में है, लौट पड़ा। फँसेंगे तो दोनों फँसेंगे। रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया।

प्रातःकाल दोनों मित्र काजी हाउस में बंद कर दिए गए।

दोनों मित्रों को जीवन में पहली बार ऐसा साबका पड़ा कि सारा दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला। समझ में ही न आता था। यह कैसा स्वामी है। इससे तो गया फिर भी अच्छा था। वहाँ कई भैंसें थीं, कई बकरियाँ, कई घोड़े; कई गधे, पर किसी के सामने चारा न था, सब जमीन पर मुरदों की तरह पड़े थे। कई तो इतने कमजोर हो गए थे कि खड़े भी न हो सकते थे। सारा दिन दोनों मित्र फाटक की ओर टकटकी लगाए ताकते रहे, पर कोई चारा लेकर आता न दिखाई दिया। तब दोनों ने दीवार की नमकीन मिट्टी चाटनी शुरू की, पर इससे क्या तृप्ति होगी?

रात को भी कुछ भोजन न मिला, तो हीरा के दिल में विद्रोह की ज्वाला दहक उठी।

मोती से बोला—अब तो नहीं रहा जाता, मोती!

मोती ने सिर लटकाए हुए जवाब दिया—मुझे तो मालूम होता है प्राण निकल रहे हैं।

‘इतनी जल्द हिम्मत न हारो भाई! यहाँ से भागने का कोई उपाय निकालना चाहिए।’

‘आओ दीवार तोड़ डालें।’

‘मुझसे तो अब कुछ न होगा।’

‘बस इसी बूते पर अकड़ते थे!’

‘सारी अकड़ निकल गई।’

बाड़े की दीवार कच्ची थी। हीरा मजबूत तो था ही, अपने नुकीले सींग दीवार में गड़ा दिए और जोर मारा, तो मिट्टी का एक चप्पड़ निकल आया। फिर तो उसका साहस बढ़ा। उसने दौड़-दौड़कर दीवार पर चोटें कीं और हर चोट में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी गिराने लगा।

उसी समय काजीहाउस का चौकीदार लालटेन लेकर, जानवरों की हाजिरी लेने आ निकला। हीरा का यह उजड़ुपन देखकर उसने उसे कई डंडे रसीद किए और मोटी-सी रस्सी से बाँध दिया।

मोती ने पड़े-पड़े कहा—आखिर मार खाई, क्या मिला?

‘अपने बूते पर जोर तो मार लिया।’

‘ऐसा जोर मारना किस काम का कि और बंधन में पड़ गए।’

‘जोर तो मारता ही जाऊँगा, चाहे कितने बंधन पड़ते जाएँ।’

‘जान से हाथ धोना पड़ेगा।’

‘कुछ परवाह नहीं। यों भी तो मरना ही है। सोचो, दीवार खुद जाती, तो कितनी जानें बच जातीं। इतने भाई यहाँ बंद हैं। किसी की देह में ‘जान नहीं है। दो-चार दिन और यही हाल रहा तो सब मर जाएँगे।’

‘हाँ, यह तो बात है। अच्छा तो लो, फिर मैं भी जोर लगाता हूँ।’

मोती ने भी दीवार में उसी जगह सींग मारा। थोड़ी-सी मिट्टी गिरी और हिम्मत बढ़ी। फिर तो वह दीवार में सींग लगाकर इस तरह जोर करने लगा मानो किसी द्वंद्वी से लड़ रहा है। आखिर दो घंटे की जोर आजमाई के बाद दीवार ऊपर से लगभग एक हाथ गिर गई। उसने दूनी शक्ति से धक्का मारा, तो आधी दीवार गिर पड़ी।

दीवार का गिरना था कि अधमरे से पड़े हुए सभी जानवर चेत उठे। तीनों घोड़ियाँ सरपट भाग निकलीं। फिर बकरियाँ निकलीं। इसके बाद भैंसें भी खिसक गईं; पर गधे अभी तक ज्यों के त्यों खड़े थे।

हीरा ने पूछा—तुम क्यों नहीं भाग जाते?

एक गधे ने कहा—जो कहीं फिर पकड़ लिए जाएँ?

‘तो क्या हरज है। अभी तो भागने का अवसर है।’

‘हमें तो डर लगता है। हम यहीं पड़े रहेंगे।’

आधी रात से ऊपर जा चुकी थी। दोनों गधे अभी तक खड़े सोच रहे थे, भागें या न भागें। और मोती अपने मित्र की रस्सी तोड़ने में लगा हुआ था, जब वह हार गया तो हीरा ने कहा



—तुम जाओ, मुझे यहीं पड़ा रहने दो। शायद कहीं भेट हो जाए।

मोती ने आँखों में आँसू लाकर कहा—तुम मुझे इतना स्वार्थी समझते हो हीरा! हम और तुम इतने दिनों एक साथ रहे। आज तुम विपत्ति में पड़ गए, तो मैं तुम्हें छोड़कर अलग हो जाऊँ?

हीरा ने कहा—बहुत मार पड़ेगी। लोग समझ जाएँगे, यह तुम्हारी शरारत है।

मोती गर्व से बोला—जिस अपराध के लिए तुम्हें गले में बंधन पड़ा, उसके लिए अगर मुझ पर मार पड़े, तो क्या चिंता। इतना तो हो ही गया कि नौ-दस प्राणियों की जान बच गई। ये सब तो आशीर्वाद देंगे।

यह कहते हुए मोती ने दोनों गधों को सींगों से मार-मारकर बाड़े से बहार निकाला और तब अपने बंधु के पास आकर सो रहा।

भोर होते ही मुंशी और चौकीदार और अन्य कर्मचारियों में कैसी खलबली मची, इसके लिखने की ज़रूरत नहीं। बस, इतना ही काफी है कि मोती की खूब मरम्मत हुई और उसे भी मोटी रस्सी से बाँध दिया गया।

एक सप्ताह तक दोनों मित्र वहाँ बँधे पड़े रहे। किसी ने चारे का एक तृण भी न डाला। हाँ, एक बार पानी दिखा दिया जाता था। यही उनका आधार था। दोनों इतने दुर्बल हो गए कि उठा तक न जाता था। ठठरियाँ निकल आई थीं।

एक दिन बाड़े के सामने डुग्गी बजन लगी और दोपहर होते-होते वहाँ पचास-साठ आदमी जमा हो गए। तब दोनों मित्र निकाले गए और उनकी देखभाल होने लगी। लोग आ-आकर उनकी सूरत देखते और मन फीका करके चले जाते। ऐसे मृतक बैलों का कौन खरीदार होता?

सहसा एक दढ़ियल आदमी, जिसकी आँखें लाल थीं और मुद्रा अत्यंत कठोर, आया और दोनों मित्रों के कूल्हों में उँगली गोदकर मुंशीजी से बातें करने लगा। उसका चेहरा देखकर अंतर्ज्ञान से दोनों मित्रों के दिल काँप उठे। वह कौन है, उन्हें क्यों टटोल रहा है, इस विषय में उन्हें कोई संदेह न हुआ। दोनों ने एक-दूसरे को भीत नेत्रों से देखा और सिर झुका लिया।

हीरा ने कहा—गया के घर से नाहक भागे। अब जान न बचेगी।

मोती ने अश्रद्धाभाव से उत्तर दिया—कहते हैं, भगवान् सबके ऊपर दया करते हैं। इन्हें हमारे ऊपर क्यों दया नहीं आती?

‘भगवान के लिए हमारा मरना-जीना दोनों बराबर हैं। चलो, अच्छा ही है, कुछ दिन उसके पास तो रहेंगे। एक बार भगवान् ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था। क्या अब न बचाएँगे?’

‘यह आदमी छुरी चलाएगा। देख लेना।’

‘तो क्या चिंता है। मांस, खाल, सींग, हड्डी सब किसी-न-किसी काम आ जाएँगी।’

नीलाम हो जाने के बाद दोनों मित्र उस दढ़ियल के साथ चले। दोनों की बोटी-बोटी काँप रही थी। बेचारे पाँव तक न उठा सकते थे; पर भय के मारे गिरते-गिरते भागे जाते थे, क्योंकि

वह जरा भी चाल धीमी हो जाने पर जोर का डंडा जमा देता था।

राह में गाय-बैलों का रेवड़ हरे-भरे हार में चरता नजर आया। सभी जानवर प्रसन्न थे, चिकने, चपल। कोई उछलता था, कोई आनंद से बैठा पागुर करता था। कितना सुखी जीवन था इनका, पर कितने स्वार्थी हैं सब। किसी को चिंता नहीं कि उनके दो भाई अधिक के हाथ पड़े कैसे दुःखी हैं।

सहसा दोनों को ऐसा मालूम हुआ, यह परिचित राह है। हाँ, इसी रास्ते से गया उन्हें ले गया था। वही खेत, वही बाग, वही गाँव मिलने लगे। प्रतिक्षण उनकी चाल तेज होने लगी। सारी थकान, सारी दुर्बलता गायब हो गई। अहा, यह लो! अपना ही हार आ गया। इसी कुएँ पर हम पुर चलाने आया करते थे। हाँ, यही कुआँ है।

मोती ने कहा—हमारा घर नगीच आ गया।

हीरा बोला—भगवान् की दया है।

‘मैं तो अब घर भागता हूँ।’

‘यह जाने देगा?’

‘इसे मार गिराता हूँ।’

‘नहीं-नहीं, दौड़कर थान पर ले चलो। वहाँ से हम आगे न जाएँगे।’

दोनों उन्मत्त होकर बछड़ों की भाँति कुलेलें करते हुए घर की ओर दौड़े। वह हमारा थान है। दोनों दौड़कर अपने थान पर आए और खड़े हो गए। दड़ियल भी पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था।

झूरी द्वार पर बैठा धूप खा रहा था। बैलों को देखते ही दौड़ा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने लगा। मित्रों की आँखों से आनंद के आँसू बहने लगे। एक झूरी का हाथ चाट रहा था।

दड़ियल ने जाकर बैलों की रस्सियाँ पकड़ लीं।

झूरी ने कहा—मेरे बैल हैं।

‘तुम्हारे बैल कैसे? मैं मवेशीखाने से नीलाम लिए आता हूँ।’

‘मैं तो समझता हूँ, चुराए लिए आते हो। चुपके से चले जाओ। मेरे बैल हैं। मैं बेचूँगा, तो बिकेंगे। किसी को मेरे बैल नीलाम करने का क्या अख्तियार है?’

‘जाकर थाने में रपट कर दूँगा।’

‘मेरे बैल हैं। इसका सबूत यह है कि मेरे द्वार पर खड़े हैं।’

दड़ियल झल्लाकर बैलों को जबरदस्ती पकड़ ले जाने के लिए बढ़ा। उसी वक्त मोती ने सींग चलाया। दड़ियल पीछे हटा। मोती ने पीछा किया। दड़ियल भागा। मोती पीछे दौड़ा। गाँव के बाहर निकल जाने पर वह रुका, पर खड़ा दड़ियल रास्ता देख रहा था। दड़ियल दूर खड़ा धमकियाँ दे रहा था, गालियाँ निकाल रहा था, पत्थर फेंक रहा था और मोती विजयी शूर की भाँति उसका रास्ता रोके खड़ा था। गाँव के लोग तमाशा देखते थे और हँसते थे।

जब दड़ियल हारकर चला गया, तो मोती अकड़ता हुआ लौटा।

हीरा ने कहा—मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से में आकर मार न बैठो।

‘अगर वह मुझे पकड़ता, तो मैं बेमारे न छोड़ता।’

‘अब न आएगा।’

‘आएगा तो दूर ही से खबर लूँगा। देखूँ कैसे ले जाता है।’

‘जो गोली मरवा दे?’

‘मर जाऊँगा, उसके काम न आऊँगा।’

‘हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता।’

‘इसलिए कि हम इतने सीधे होते हैं।’

जरा देर में नाँद में खली, भूसा, चोकर, दाना भर दिया गया और दोनों मित्र खाने लगे। झूरी खड़ा दोनों को सहला रहा था और बीसों लड़के तमाशा देख रहे थे। सारे गाँव में उछाह-सा मालूम होता था।

उसी समय मालकिन ने आकर दोनों के माथे चूम लिए।

## रामलीला

इधर एक मुद्दत से रामलीला देखने नहीं गया। बंदरों के भद्दे चेहरे लगाए, आधी टाँगों का पाजामा और काले रंग का कुर्ता पहने, आदमियों को दौड़ते, हू-हू करते देखकर अब हँसी आती है, मजा नहीं आता। काशी की लीला जगद्विख्यात है। सुना है, लोग दूर-दूर से देखने आते हैं। मैं ही बड़े शौक से गया, पर मुझे तो वहाँ की लीला, और किसी वज्र देहात की लीला में कोई अंतर दिखाई नहीं दिया। हाँ, रामनगर की लीला में कुछ साज-समान अच्छे हैं। राक्षसों और बंदरों के चेहरे पीतल के, गदाएँ भी पीतल की, कदाचित बनवासी भ्राताओं के मुकुट सच्चे काम के हों, लेकिन साज-सामान के सिवा वहाँ भी वही हू-हू के सिवा और कुछ नहीं। फिर भी लाखों आदमियों की भीड़ लगी रहती है।

लेकिन एक जमाना वह था, जब मुझे भी रामलीला में आनंद आता था। आनंद तो बहुत हल्का-सा शब्द है। वह आनंद उन्माद से कम न था। संयोगवश उन दिनों मेरे घर से बहुत थोड़ी दूरी पर रामलीला का मैदान था और जिस घर में लीला पात्रों का रूप-रंग भरा जाता था, वह मेरे घर से बिल्कुल मिला हुआ था। दो बजे दिन से पात्रों की सजावट होने लगती थी। मैं दोपहर से वहाँ जा बैठता और जिस उत्साह से दौड़-दौड़कर छोटे-मोटे काम करता, उस उत्साह से तो आज अपनी पेंशन भी लेने नहीं जाता। एक कोठरी में राजकुमारों का श्रृंगार होता था। उनकी देह में रामरज पीसकर पोती जाती, मुँह पर पाउडर लगाया जाता और पाउडर के ऊपर लाल, हरे, नीले रंग की बुंदकियाँ लगाई जाती थीं। सारा माथा, भौंहे, गाल ठोड़ी बुंदकियों से रच उठती थीं। एक ही आदमी इस काम में कुशल था। वही बारी-बारी से तीनों पात्रों का श्रृंगार करता था। रंग की प्यालियों में पानी लाना, रामरज पीसना, पंखा झलना मेरा काम था। जब तैयारियों के बाद विमान निकलता तो उस पर रामचंद्रजी के पीछे बैठकर मुझे जो उल्लास, जो गर्व, जो रोमांच होता था, वह अब लाट साहब के दरबार में कुरसी पर बैठकर नहीं होता। एक बार जब मेंबर साहब ने व्यवस्थापक सभा में मेरे प्रस्ताव का अनुमोदन किया था, उस वक्त मुझे कुछ उसी तरह का उल्लास, गर्व और रोमांच हुआ था। हाँ, एक बार जब मेरा ज्येष्ठ पुत्र नायब तहसीलदारी में नामजद हुआ, तब भी कुछ ऐसी तरंगें मन में उठी थीं, पर इनमें और बाल-विह्वलता में बड़ा अंतर है। तब ऐसा मालूम होता था कि मैं स्वर्ग में बैठा हूँ।

निषाद नौका-लीला का दिन था। मैं दो-चार लड़कों के बहकावे में आकर गुल्ली-डंडा खेलने लगा। आज श्रृंगार देखने न गया। विमान भी निकला पर मैंने खेलना न छोड़ा। मुझे अपना दाँव लेना था। अपना दाँव छोड़ने के लिए उससे कहीं बढ़कर आत्मत्याग की जरूरत थी, जितना मैं कर सकता था। अगर दाँव देना होता, तो मैं कब का भाग खड़ा होता, लेकिन पदाने में कुछ और ही बात होती है। खैर, दाँव पूरा हुआ। अगर चाहता, तो धाँधली करके

दस-पाँच मिनट और पदा सकता था इसकी काफी गुंजाइश थी, लेकिन अब इसका मौका न था। मैं सीधे नाले की तरफ दौड़ा। विमान जल-तट पर पहुँच चुका था। मैंने दूर से देखा, मल्लाह किशूती लिए आ रहे हैं। दौड़ा, लेकिन आदमियों की भीड़ में दौड़ना कठिन था। आखिर जब मैं भीड़ हटाता, प्राणपण से आगे बढ़ता घाट तक पहुँचा तो निषाद अपनी नौका खोल चुका था। रामचंद्र पर मेरी कितनी श्रद्धा थी। मैं अपने पाठ की चिंता न करके उन्हें पढ़ा दिया करता था, जिससे वह फेल न हो जाएँ। मुझसे उम्र में ज्यादा होने पर भी वह नीची कक्षा में पढ़ते थे। लेकिन वही रामचंद्र नौका पर बैठे इस तरह मुँह फेरे चले जाते थे, मानो मुझसे जान-पहचान ही नहीं। नकल में भी असल की कुछ-न-कुछ बू आ ही जाती है। भक्तों पर जिनकी निगाह सदा तीखी रही है, वह मुझे क्या उबारते? मैं विकल होकर उस बछड़े की भाँति कूदने लगा, जिसकी गरदन पर पहली बार जुआ रखा गया हो। कभी लपककर नाले की ओर जाता, कभी किसी सहायक की खोज में पीछे की तरफ दौड़ता, पर सबके सब अपनी धुन में मस्त थे, मेरी चीख-पुकार किसी के कानों तक न पहुँची। तब से बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ झेलीं, पर उस समय जितना दुख हुआ, उतना फिर कभी नहीं हुआ।

हमने निश्चय किया था कि अब रामचंद्र से कभी न बोलूँगा, न कभी खाने की कोई चीज ही दूँगा, लेकिन ज्यों ही नाले को पार करके वह पुल की ओर से लौटे, मैं दौड़कर विमान पर चढ़ गया, और ऐसा खुश हुआ मानो कोई बात ही न हुई थी।

रामलीला समाप्त हो गई थी। राजगद्दी होने वाली थी, पर न जाने क्या देर हो रही थी। शायद चंदा कम वसूल हुआ था। रामचंद्र की इन दिनों कोई बात न पूछता था। न तो घर जाने की छुट्टी मिलती थी, न भोजन का ही प्रबंध होता था। चौधरी साहब के यहाँ से एक सीधा कोई तीन बजे दिन को मिलता था। बाकी सारे दिन कोई पानी को भी न पूछता, लेकिन मेरी श्रद्धा अभी तक ज्यों-की-त्यों थी। मेरी दृष्टि में वह अब भी रामचंद्र ही थे। घर पर मुझे खाने की जो चीज मिलती, वह लेकर रामचंद्र को दे आता। उन्हें खिलाने में मुझे जितना आनंद मिलता था, उतना खाने में कभी न मिलता था। कोई मिठाई या फल पाते ही बेतहाशा चौपाल की ओर दौड़ता, अगर रामचंद्र वहाँ न मिलते, तो उन्हें चारों ओर तलाश करता और जब तक वह चीज उन्हें न खिला लेता, मुझे चैन न आता था।

खैर, राजगद्दी का दिन आया। रामलीला के मैदान में एक बड़ा-सा शामियाना ताना गया। उसकी सजावट की गई। वेश्याओं के दल भी आ पहुँचे। शाम को रामचंद्र की सवारी निकाली और प्रत्येक द्वार पर उनकी आरती उतारी गई। श्रद्धानुसार किसी ने रूपए दिए, किसी ने पैसे। मेरे पिता पुलिस के आदमी थे इसलिए उन्होंने बिना कुछ दिए ही आरती उतारी। इस वक्त मुझे जितनी लज्जा आई, उसे बयान नहीं कर सकता। मेरे पास उस वक्त संयोग से एक रूपया था। मेरे मामाजी दशहरे के पहले आए थे और मुझे एक रूपया दे गए थे। उस रूपए को मैंने रख छोड़ा था। दशहरे के दिन भी उसे खर्च न कर सका। मैंने तुरंत वह रूपया लाकर आरती की थाली में डाल दिया। पिताजी मेरी ओर कुपित नेत्रों से देखकर रह गए। उन्होंने कुछ कहा तो नहीं, लेकिन मुँह ऐसा बना लिया, जिससे प्रकट होता था कि मेरी इस धृष्टता से उनके रौब में बट्टा लग गया। रात को दस बजते-बजते यह परिक्रमा पूरी हुई,

आरती की थाली रूपयों और पैसों से भरी हुई थी। ठीक तो नहीं कह सकता, मगर अब ऐसा अनुमान होता है कि चार-पाँच सौ रूपयों से कम न थे। चौधरी साहब इससे कुछ ज्यादा ही खर्च चुके थे। इन्हें इसकी बड़ी फिक्र हुई कि किसी तरह कम-से-कम दो सौ रूपए और वसूल हो जाएँ। इसकी सबसे अच्छी तरकीब उनूँ यही मालूम हुई कि वेश्याओं द्वारा महफिल में वसूली हो। जब लोग आकर बैठ जाएँ और महफिल का रंग जम जाए, तो आबादीजान रसिकजनों की कलाइयाँ पकड़-पकड़कर ऐसे हाव-भाव दिखावे कि लोग शरमाते-शरमाते भी कुछ दे ही मरें। आबादीजान और चौधरी साहब में सलाह होने लगी। मैं संयोग से उन दोनों प्राणियों की बातें सुन रहा था। चौधरी साहब ने समझा होगा, यह लौंडा क्या मतलब समझेगा, पर यहाँ ईश्वर की दया से अक्ल के पुतले थे। सारी दास्तान समझ में आ जाती थी।

चौधरी—सुनो आबादीजान, यह तुम्हारी ज्यादाती है। हमारा और तुम्हारा कोई पहला साबका तो है नहीं। ईश्वर ने चाहा, तो यहाँ हमेशा तुम्हारा आना-जाना लगा रहेगा। अबकी चंदा बहुत कम आया, नहीं तो मैं तुमसे इसरार न करता।

आबादी—आप मुझसे जमींदारी चाल चलते हैं, क्यों? मगर यहाँ हुजूर की दाल न गलेगी। वाह! रूपए तो मैं वसूल करूँ और मूँछों पर ताव आप दें। कमाई का यह ढंग अच्छा निकाला है। इस कमाई से तो वाकई आप थोड़े दिनों में राजा हो जाएँगे। उसके सामने जमींदारी झक मारेगी। बस, कल ही से एक चकला खोल दीजिए। खुदा की कसम माला-माल हो जाइएगा।

चौधरी—तुम तो दिल्लगी करती हो, और यहाँ काफिया तंग हो रहा है।

आबादी—तो आप भी मुझी से उस्तादी करते हैं। यहाँ आप, जैसे कइयों को रोज उँगलियों पर नचाती हूँ।

चौधरी—आखिर मंशा क्या है?

आबादी—जो कुछ वसूल करूँ, उसमें से आधा मेरा और आधा आपका, लाइए हाथ मारिए।

चौधरी—यही सही।

आबादी—अच्छा, तो पहले मेरे सौ रूपए गिन दीजिए। पीछे से आप अलसंट करने लगेंगे।

चौधरी—वाह! वह भी लोगी और यह भी।

आबादी—अच्छा, तो क्या आप समझते थे कि अपनी उजरत छोड़ दूँगी। वाह री आपकी समझ! खूब, क्यों न हो? दीवाना बकारे दरवेश होशियार।

चौधरी—तो क्या तुमने दोहरी फीस लेने की ठानी है?

आबादी—अगर आपको सौ दफे गरज हो तो। वरना मेरे सौ रूपए तो कहीं गए नहीं। मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो लोगों की जेब में हाथ डालती फिरूँ।

चौधरी की एक न चली। आबादी के सामने दबना पड़ा। नाच शुरू हुआ। आबादीजान बला की शोख औरत थी। एक तो कमसिन, उस पर हसीना। और उसकी अदाएँ तो गजब

की थीं कि मेरी तबीयत भी मसूत हुई जाती थी। आदमियों को पहचानने का गुण भी उसमें कुछ कम न था। जिसके सामने बैठ गई, उससे कुछ-न-कुछ ले ही लिया। पाँच रूपए से कम तो शायद किसी ने दिए हों। पिताजी के सामने भी वह जा बैठी। मैं तो मारे शर्म के गड़ गया। जब उसने उनकी कलाई पकड़ी, तब तो मैं सहम उठा। मुझे यकीन था कि पिताजी उसका हाथ झटक देंगे और शायद दुत्कार भी दें, किंतु यह क्या हो रहा है। ईश्वर! मेरी आँखें धोखा नहीं खा रही हैं। पिताजी मूँछों में हँस रहे हैं। ऐसी मृदु हँसी उनके चेहरे पर मैंने कभी नहीं देखी थी। उनकी आँखों से अनुराग टपक पड़ता था। उनका एक-एक रोम पुलकित हो रहा था; मगर ईश्वर ने मेरी लाज रख ली। वह देखो, उन्होंने धीरे से आबादी के कोमल हाथों से अपनी कलाई छुड़ा ली। अरे! यह फिर क्या हुआ। आबादी तो उनके गले में बाँहें डाल देती है। अबकी पिताजी जरूर पीटेंगे। चुड़ैल को जरा भी शर्म नहीं।

एक महाशय ने मुस्कराकर कहा, यहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी, आबादीजान। और दरवाजा देखो।

बात तो इन महाशय ने मेरे मन की कही और बहुत ही उचित कही, लेकिन न जाने पिताजी ने उनकी ओर कुपित नेत्रों से देखा और मूँछों पर ताव दिया। मुँह पर तो कुछ न बोले पर उनके मुख की आकृति चिल्लाकर सरोष शब्दों में कह रही थी-तू बनिया मुझे समझता क्या है? यहाँ ऐसे अवसर पर जान तक निसार करने को तैयार हूँ, रूपए की हकीकत ही क्या। तेरा जी चाहे, आजमा ले। तुझसे दूनी रकम दे डालूँ तो मुँह न दिखाऊँ। महान आश्चर्य, घोर अनर्थ! अरे, जमीन फट क्यों नहीं जाती। आकाश, तू फट क्यों नहीं पड़ता। अरे मौत क्यों नहीं आ जाती! पिता जी जेब में हाथ डाल रहे हैं। वह कोई चीज निकाली और सेठ को दिखाकर आबादीजान को दे डाली। आह! यह तो अशर्फी है। चारों ओर तालियाँ बजने लगीं। सेठ जी उल्लू बन गए या पिताजी ने मुँह की खाई, इसका निश्चय मैं नहीं कर सका। मैंने केवल इतना देखा कि पिता जी ने एक अशर्फी निकालकर आबादीजान को दी। उनकी आँखों में इस समय इतना गर्वयुक्त उल्लास था, मानो उन्होंने हातिम की कब्र पर लात मारी हो। यही पिताजी तो हैं, जिन्होंने मुझे आरती में एक रूपया डालते देखकर मेरी ओर इस तरह देखा था, मानों मुझे फाड़ ही खाएँगे। मेरे उस समय के परमोचित व्यवहार से उनके रौब में फर्क आता था और इस समय इस घृणित, कुत्सित, निंदित व्यवहार पर वह गर्व और आनंद से फूले न समाते थे।

आबादीजान ने एक मनोहर मुस्कान से पिताजी को सलाम किया और आगे बढ़ी; मगर मुझसे वहाँ न बैठा गया। मारे शर्म के मेरा मसूतक झुका जाता था। अगर मेरी आँखों देखी बात न होती, तो मुझे इस पर कभी एतबार न होता। मैं बाहर जो कुछ देखता-सुनता था, उसकी रिपोर्ट अम्मा से जरूर करता था; पर इस मामले को मैंने उनसे छिपा रखा। मैं जानता था, उन्हें यह बात सुनकर बड़ा दुख होगा।

रात-भर गाना होता रहा। तबले की धमक मेरे कानों में आ रही थी। जी चाहता था, चलकर देखूँ, पर साहस न होता था। मैं किसी को मुँह कैसे दिखलाऊँगा? कहीं किसी ने पिताजी का जिक्र छेड़ दिया तो क्या करूँगा।

प्रातःकाल रामचंद्र जी की विदाई होने वाली है। मैं चारपाई से उठते ही आँखें मलता हुआ चौपाल की ओर भागा। डर रहा था कि कहीं रामचंद्र जी चले न गए हों। पहुँचा तो देखा तवायफों की सवारियाँ जाने को तैयार हैं। बीसों आदमी हसरत से नाक-मुँह बनाए उन्हें घेरे खड़े थे। मैंने उनकी ओर आँख न उठाई। सीधा रामचंद्र के पास पहुँचा। लक्ष्मण-सीता रो रहे थे और रामचंद्र खड़े काँधे पर लुटिया-डोर डाले उन्हें समझा रहे थे। मेरे सिवा वहाँ कोई न था। मैंने कुंठित स्वर में रामचंद्र से पूछा—क्या तुम्हारी विदाई हो गई?

रामचंद्र—हो तो गई। हमारी विदाई ही क्या? चौधरी साहब ने कह दिया, जाओ। चले जाते हैं।

‘क्या रूपए और कपड़े नहीं मिले?’

‘अभी नहीं मिले। चौधरी साहब कहते हैं, इस वक्त बचत में रूपए नहीं हैं। फिर आकर ले जाना।’

‘कुछ नहीं मिला?’

‘एक पैसा भी नहीं। कहते हैं, कुछ बचत नहीं हुई। मैंने सोचा था, कुछ रूपए मिल जाएँगे, तो पढ़ने की किताबें ले लूँगा। सो कुछ न मिला। राह-खर्च भी नहीं दिया। कहते हैं, कौन दूर है, पैदल चले जाओ।’

मुझे ऐसा क्रोध आया कि चलकर चौधरी को खूब आड़े हाथों लूँ। वेश्याओं के लिए रूपए, सवारियाँ, सबकुछ, पर बेचारे रामचंद्र और उनके साथियों के लिए कुछ भी नहीं है। जिन लोगों ने रात को आबादीजान पर दस-दस, बीस-बीस रूपए न्यौछावर किए थे, उनके पास क्या इनके लिए दो-दो चार-चार आने वाले पैसे भी नहीं? पिताजी ने आबादीजान को एक अशर्फी दी। देखूँ, इनके नाम पर क्या देते हैं। मैं दौड़ा हुआ पिताजी के पास गया। वह कहीं तपतीश पर जाने को तैयार खड़े थे। मुझे देखकर बोले, ‘कहाँ घूम रहे हो? पढ़ने के वक्त तुम्हें घूमने की सूझती है।’

मैंने कहा—गया था चौपाल। रामचंद्र विदा हो रहे हैं। उन्हें चौधरी साहब ने कुछ नहीं दिया।

‘तो तुम्हें इसकी क्या फिक्र पड़ी है?’

‘वह जाएँगे कैसे? पास राह खर्च भी तो नहीं है।’

‘क्या कुछ खर्च भी नहीं दिया? वह चौधरी साहब की बेइन्साफी है।’

‘आप अगर दो रूपए दे दें तो उन्हें दे आऊँ। इतने में शायद वह घर पहुँच जाएँ।’

पिताजी ने तीव्र दृष्टि से देखा और कहा—जाओ, अपनी किताब देखो। मेरे पास रूपए नहीं हैं।

यह कहकर घोड़े पर सवार हो गए। उसी दिन पिताजी पर से मेरी श्रद्धा उठ गई। मैंने फिर उनकी डाँट-डपट की परवाह नहीं की। मेरा दिल कहता, आपको मुझे उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। मुझे उनकी सूरत से चिढ़ हो गई। वह जो कहते, मैं ठीक उसका उलटा करता। यद्यपि इससे मेरी ही हानि हुई, लेकिन मेरा अंतःकरण उस समय विप्लवकारी विचारों से भरा हुआ था।



मेरे पास दो आने पैसे पड़े हुए थे। मैंने पैसे उठा लिए और जाकर शर्माते-शर्माते रामचंद्र को दे दिए। उन पैसों को देखकर रामचंद्र को जितना हर्ष हुआ वह मेरे लिए आशातीत था। टूट पड़े, मानो प्यासे को पानी मिल गया।

वह दो आने पैसे लेकर तीनों मूर्तियाँ विदा हुईं। केवल मैं ही उनके साथ कस्बे के बाहर पहुँचाने आया।

उन्हें विदा करके लौटा, तो मेरी आँखें सजल थीं पर हृदय आनंद से उमड़ा हुआ था।

## बड़े भाई साहब

मेरे भाई साहब मुझसे पाँच साल बड़े थे, लेकिन केवल तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था, जब मैंने शुरू किया; लेकिन तालीम जैसे महत्त्व के मामले में वह जल्दीबाजी से काम लेना पसंद न करते थे। इस भवन की बुनियाद खूब मजबूत डालना चाहते थे, जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो तो मकान कैसे पायेदार बने?

मैं छोटा था, वह बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल की थी, वह चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तंबीह और निगरानी का पूरा, जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुक्म को कानून समझूँ।

वह स्वभाव से बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार-बार सुंदर अक्षरों में नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता, न कोई सामंजस्य। मसलन एक बार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी-स्पेशल, अमीना, भाइयों-भाइयों, दरअसल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत् राधेश्याम, एक घंटे तक-इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने बहुत चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूँ, लेकिन असफल रहा। और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वह नवीं जमात में थे, मैं पाँचवीं में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटे मुँह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढ़ने में बिलकुल न लगता था। एक घंटा भी किताब लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान में आ जाता और कभी कंकरियाँ उछालता, कभी कागज की तितलियाँ उड़ाता और कहीं कोई साथी मिला तो पूछना ही क्या! कभी चारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे हैं, कभी फाटक पर सवार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनंद उठा रहे हैं, लेकिन कमरे में आते ही भाई साहब का वह रौद्र रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता—‘कहाँ थे?’ हमेशा यह सवाल उसी ध्वनि में पूछा जाता था। और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मेरे मुँह से यह बात क्यों न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि स्नेह और रोष से मिले हुए शब्द में मेरा सत्कार करें।

‘इसी तरह अँग्रेजी पढ़ोगे, तो जिंदगी भर पढ़ते रहोगे और एक हर्फ न आएगा। अँग्रेजी

पढ़ना कोई हँसी-खेल नहीं है कि जो चाहे पढ़ ले, नहीं तो ऐरा-गैरा नत्थू खैरा सभी अँग्रेजों के समान विद्वान हो जाते। यहाँ दिन-रात आँखें फोड़नी पड़ती हैं और खून जलाना पड़ता है, तब कहीं यह विद्या आती है। और आती क्या है, हाँ कहने को आती है। बड़े-बड़े विद्वान भी शुद्ध अँग्रेजी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूँ, तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नहीं लेते। मैं कितनी मेहनत करता हूँ, यह तुम अपनी आँखों से देखते हो, अगर नहीं देखते तो यह तुम्हारी आँखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कुसूर है। इतने मेले-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा? रोज ही क्रिकेट और हॉकी मैच होते हैं, मैं पास नहीं फटकता। हमेशा पढ़ता रहता हूँ। उस पर भी एक-एक दरजे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूँ, फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कूद में वक्त गवाँकर पास हो जाओगे? मुझे तो दो तीन साल लगते हैं, तुम उम्र भर इस दरजे में पड़े सड़ते रहोगे। अगर तुम्हें इस तरह उम्र गुंवानी है, तो बेहतर है, घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डंडा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रूपए क्यों बरबाद करते हो? '

मैं यह लताड़ सुनकर आँसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था! अपराध तो मैंने किया, तलाड़ कौन सहे? भाई साहब उपदेश की कला में निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बात कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-बाण चलाते कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत टूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने की शक्ति मैं अपने में न पाता था। और उस निराशा में जरा देर के लिए मैं सोचने लगता, क्यों न घर चला जाऊँ। जो काम मेरे बूते से बाहर है, उसमें हाथ डालकर क्यों अपनी जिंदगी खराब करूँ। मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था, लेकिन उतनी मेहनत से मुझे तो चक्कर आ जाता था। लेकिन घंटे-दो-घंटे बाद निराशा के बादल फट जाते और इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढ़ूँगा। चटपट एक टाइम-टेबल बना डालता। बिना पहले से नक्शा बनाए, कोई स्कीम तैयार किए, काम कैसे शुरू करूँ? टाइम-टेबल में खेल-कूद की मद बिलकुल उड़ जाती। प्रातःकाल उठना, छः बजे मुँह-हाथ धो, नाश्ता कर, पढ़ने बैठ जाना। छः से आठ तक अँग्रेजी, आठ से नौ तब हिसाब, नौ से साढ़े नौ तक इतिहास फिर भोजन और स्कूल। साढ़े तीन बजे स्कूल से वापस होकर आधा घंटा आराम, चार से पाँच तक भूगोल, पाँच से छः तक ग्रामर, आधा घंटा होस्टल के सामने ही टहलना, साढ़े छः से सात तक अँग्रेजी कंपोजीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिंदी, दस से ग्यारह तक विविध विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम-टेबल बना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वे हलके-हलके झोंके, फुटबाल की उछल-कूद, कबड्डी के दाँव-घात, वालीबाल की वह तेजी और फुरती मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खींच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जानलेवा टाइम-टेबल, वह आँख-फोड़ पुस्तकें, किसी की याद न रहती और फिर भाई साहब को नसीहत और फज़ीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साथे से भागता, उनकी आँखों से दूर रहने की चेष्टा करता, कमरे में इस तरह दबे पाँव आता कि उन्हें खबर न हो। उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर नंगी तलवार-सी लटकती

मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के बंधन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियाँ खाकर भी खेलकूद का तिरस्कार न कर पाता।

सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहब फेल हो गए, मैं पास हो गया और दरजे में प्रथम आया। मेरे और उनके बीच में केवल दो साल का अंतर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथों ले लूँ—आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गई? मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दरजे में अव्वल भी हूँ। लेकिन वह इतने दुःखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हाँ, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्माभिमान भी बढ़ा। भाई साहब का यह रोब मुझ पर न रहा। आजादी से खेलकूद में शरीक होने लगा। दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फजीहत की तो साफ कह दूँगा—आपने अपना खून जलाकर कौन-सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते-कूदते दरजे में अव्वल आ गया। जबान से यह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंग-ढंग से साफ जाहिर होता था कि भाई साहब का वह आतंक मुझ पर नहीं है। भाई साहब ने इसे भाँप लिया—उनकी सहज-बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोर का सारा समय गुल्ली-डंडे की भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा, तो भाई साहब ने मानो तलवार खींच ली और मुझ पर टूट पड़े—देखता हूँ, इस साल पास हो गए और दरजे में अव्वल आ गए तो तुम्हें दिमाग हो गया है; मगर भाई जान, घमंड तो बड़ों-बड़ों का नहीं रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है? इतिहास में रावण का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया? या यों ही पढ़ गए? महज इम्तहान पास कर लेना कोई चीज नहीं, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो, उसका अभिप्राय समझो। रावण भूमंडल का स्वामी था। ऐसे राजाओं को चक्रवर्ती कहते हैं। आजकल अँग्रेजों के राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा हुआ है, पर इन्हें चक्रवर्ती नहीं कह सकते। संसार के अनेक राष्ट्र अँग्रेजों का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते, बिल्कुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था। संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े-बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे, मगर उसका अंत क्या हुआ? घमंड ने उसका नाम-निशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चुल्लू पानी देनेवाला भी न बचा। आदमी और जो कुकर्म चाहे करे, पर अभिमान न करे, इतराये नहीं। अभिमान किया, और दीन-दुनिया दोनों से गया शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अभिमान हुआ था कि ईश्वर का उससे बढ़कर सच्चा भक्त कोई है ही नहीं। अंत में यह हुआ कि सुवर्ग से नरक में ढकेल दिया गया। शाहे रूम ने भी एक बार अहंकार किया था। भीख माँग-माँगकर मर गया। तुमने तो अभी केवल एक दर्जा पास किया है, और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया। तब तो तुम आगे बढ़ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नहीं पास हुए, अंधे के हाथ बटेर लग गई। मगर बटेर केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार-बार नहीं लग सकती। कभी-कभी गुल्ली-डंडे से भी अंधा-चोट निशाना पड़ आता है। इससे कोई सफल खिलाड़ी नहीं हो जाता। सफल खिलाड़ी वह है, जिसका कोई निशाना खाली न जाए। मेरे फेल होने पर न

जाओ। मेरे दरजे में आओगे, तो दाँतों पसीना आ जाएगा। जब अलजेबरा और ज्योमेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे, इंग्लिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा। बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं, आठ-आठ हेनरी हो गुजरे हैं। कौन-सा कांड किस हेनरी के समय में हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो। हेनरी सातवें की जगह, हेनरी आठवाँ लिखा और सब नंबर गायब। सफाचट। सिफर भी न मिलेगा, सिफर भी। हो किस खयाल में! दर्जनों तो जेम्स हुए हैं, दर्जनों विलियम, कोड़ियों चार्ल्स! दिमाग चक्कर खाने लगता है। आंधी रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे। एक नाम के पीछे दोयम, चहारम, पंचम लगाते चले गए। मुझसे पूछते, तो दस लाख नाम बता देता। और ज्योमेट्री तो बस खुदा ही पनाह! अब ज की जगह अब ज लिखा लिया और सारे नंबर कट गए। कोई इन निर्दयी मुत्तमईनों से नहीं पूछता कि आखिर अब ज और अब ज में क्या फर्क है, और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रों का खून करते हो? दाल भात रोटी या भात दाल रोटी खाई, इसमें क्या रखा है। मगर इन परीक्षकों को क्या परवाह? जो पुस्तक में लिखा है, चाहते हैं कि लड़के अक्षर-अक्षर रट डालें। और इसी रटत का नाम शिक्षा रख छोड़ा है। और आखिर इन बेसिर-पैर की बातों के रटने से फायदा? इस रेखा पर वह लंबा गिरा दो, तो आधार लंब से दूना होगा पूछिए, इससे प्रयोजन? दुगुना नहीं, चौगुना हो जाए या आधा ही रहे, मेरी बला से, लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफात याद करनी पड़ेगी। कह दिया, 'समय की पाबंदी' पर एक निबंध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। अब आप कापी सामने खोले, कलम हाथ में लिए, उसके नाम को रोइए। कौन नहीं जानता कि समय की पाबंदी बहुत अच्छी बात है, इससे आदमी के जीवन में संयम आ जाता है, दूसरों को उस पर सनेह होने लगता है, और उसके कारोबार में उन्नति होती है, लेकिन जरा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें? जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्नों में लिखने की जरूरत? मैं तो इसे हिमाकत कहता हूँ। यह तो समय की किफायत नहीं, बल्कि उसका दुरुपयोग है कि व्यर्थ में किसी बात को ठूस दिया जाए। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले। मगर नहीं, आपको चार पन्ने रँगने पड़ेंगे, चाहे जैसे लिखिए; और पन्ने भी पूरे फुलस्केप आकार के। यह छात्रों पर अत्याचार नहीं तो और क्या है? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है, संक्षेप में लिखो। समय की पाबंदी पर संक्षेप में एक निबंध लिखो, जो चार पन्ने से कम न हो। ठीक! संक्षेप में भी तो चार पन्ने हुए, नहीं तो शायद सौ-दो सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौड़िए और धीरे-धीरे भी। है उलटी बात या नहीं? बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है, लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज भी नहीं। उस पर दावा है कि हम अध्यापक हैं। मेरे दरजे में आओगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इस दरजे में अव्वल आ गए हो, तो जमीन पर पाँव नहीं रखते। इसीलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूँ, लेकिन तुमसे बड़ा हूँ। संसार का मुझे तुमने ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बाँधिए, नहीं तो पछताइएगा।

स्कूल का समय निकट था, नहीं तो ईश्वर जाने यह उपदेशमाला कब समाप्त होती।

भोजन आज मुझे निःस्वाद-सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिए जाएँ। भाई साहब ने अपने दरजे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खींचा था, उसने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़कर नहीं भागा, यही ताज्जुब है। लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों में मेरी अरुचि ज्यों-की-त्यों बनी रही। खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से न जाने देता। पढ़ता भी था, मगर बहुत कम, बस इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाए और दरजे में जलील न होना पड़े। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ, वह फिर लुप्त हो गया और फिर चोरों का-सा जीवन काटने लगा।

फिर सालाना इम्तहान हुआ और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मैं फिर पास हो गया और भाई साहब फिर फेल हो गए। मैंने बहुत मेहनत नहीं की, पर न जाने कैसे दरजे में अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाई साहब ने प्राणों तक परिश्रम किया था। कोर्स का एक-एक शब्द चाट गए थे, दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उधर, छः से साढ़े नौ तक स्कूल जाने के पहले। मुद्रा कांतिहीन हो गई थी। मगर बेचारे फेल हो गए। मुझे उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया तो वह रो पड़े और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने की खुशी आधी हो गई। मैं भी फेल हो गया होता, तो भाई साहब को इतना दुःख न होता, लेकिन विधि की बात कौन टाले।

मेरे और भाई साहब के बीच अब केवल एक दरजे का अंतर और रह गया। मेरे मन में एक कुटिल भावना उदय हुई कि कहीं भाई साहब एक साल और फेल जो जाएँ, तो मैं उनके बराबर हो जाऊँ, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेंगे, लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बलपूर्वक निकाल डाला। आखिर वह मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डाँटते हैं। मुझे उस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर यह शायद उनके उपदेशों का ही असर हो कि दनादन पास होता जाता हूँ और इतने अच्छे नंबरों से।

अब की भाई साहब कुछ नर्म पड़ गए थे। कई बार मुझे डाँटने का अवसर पाकर भी उन्होंने धीरज से काम लिया। शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डाँटने का अधिकार उन्हें नहीं रहा, या रहा तो बहुत कम। मेरी स्वच्छंदता भी बढ़ी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं तो पास हो ही जाऊँगा पढ़ूँ या न पढ़ूँ, मेरी तकदीर बलवान है। इसलिए भाई साहब के डर से जो थोड़ा-बहुत पढ़ लिया करता था, वह भी बंद हो गया। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतंगबाजी की ही भेंट होता था; फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था, और उनकी नजर बचाकर कनकौए उड़ाता था। माँझा देना, कन्ने बाँधना, पतंग टूर्नामेंट की तैयारियाँ आदि समझाएँ सब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। मैं भाई साहब को यह संदेह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरों में कम हो गया है।

एक दिन संध्या समय होस्टल से दूर मैं एक कनकौआ लूटने बेतहाशा दौड़ा जा रहा था। आँखें आसमान की ओर थीं और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मंद गति से झूमता पतंग की ओर चला जा रहा हो, मानो कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से

नए संस्कार ग्रहण करने जा रही हो। बालकों की एक पूरी सेना लंबे और झाड़दार बाँस लिए उसका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को अपने आगे-पीछे की खबर न थी। सभी मानो उस पतंग के साथ आकाश में उड़ रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है, न मोटर कारें हैं, न ट्राम, न गाड़ियाँ।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड़ हो गई, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होंने वहीं मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्रभाव से बोले—इन बाजारी लड़कों के साथ धेले के कनकौए के लिए दौड़ते तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम्हें इसका कुछ लिहाज नहीं कि अब नीची जमात में नहीं हो, बल्कि आठवीं जमात में आ गए हो और मुझसे केवल एक दरजा नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ तो अपनी पोजीशन का खयाल करना चाहिए। एक जमाना था कि लोग आठवाँ दरजा पास कर नायब तहसीलदार हो जाते थे। मैं कितने ही मिडिलचियों को जानता हूँ, जो आज अव्वल दरजे के डिप्टी मजिस्ट्रेट या सुपरिंटेंडेंट हैं। कितने ही आठवीं जमात वाले हमारे लीडर और समाचार-पत्रों के संपादक हैं। बड़े-बड़े विद्वान उनकी मातहत में काम करते हैं और तुम उसी आठवें दरजे में आकर बाजारी लड़कों के साथ कनकौए के लिए दौड़ रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कमअक्ली पर दुःख होता है। तुम जहीन हो, इसमें शक नहीं, लेकिन वह जेहन किस काम का, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले? तुम अपने दिल में समझते होंगे, मैं भाई साहब से महज एक दरजा नीचे हूँ और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नहीं है, लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और चाहे आज तुम मेरी ही जमात में आ जाओ। और परीक्षकों का यही हाल रहा, तो निस्संदेह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे और शायद एक साल बाद मुझसे आगे भी निकल जाओ, लेकिन मुझमें और तुममें जो पाँच साल का अंतर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूँगा। मुझे दुनिया का और जिंदगी का तजुरबा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम. ए. और डी. फिल. और डी. लिट्. ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती, दुनिया देखने से आती है। हमारी अम्मा ने कोई दरजा पास नहीं किया, और दादा भी शायद पाँचवी-छठी जमात के आगे नहीं गए, लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनिया की विद्या पढ़ लें, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता हैं; बल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का हमसे ज़्यादा तजुरबा है और रहेगा। अमेरिका में किस तरह की राज्य व्यवस्था है, और आठवें हेनरी ने कितने ब्याह किए और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, ये बातें चाहे न मालूम हों, लेकिन हजारों ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान उन्हें हम-तुमसे ज़्यादा है। दैव न करे, आज मैं बीमार हो जाऊँ, तो तुम्हारे हाथ-पाँव फूल जाएँगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हें और कुछ न सूझेगा। लेकिन तुम्हारी जगह दादा हों तो किसी को तार न दें, न घबराएँ, न बदहवास हों। पहले खुद मरज पहचान कर इलाज करेंगे, उसमें सफल न हुए, तो किसी डॉक्टर को बुलाएँगे। बीमारी तो खैर बड़ी चीज है। हम-तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने-भर का खर्च कैसे चले? जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस-बाईस तक खर्च कर डालते हैं, और फिर पैसे-पैसे को मुहताज हो जाते हैं।

नाश्ता बंद हो जाता है, धोबी और नाई से मुँह चुराने लगते हैं, लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे हैं, उससे आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुंब का पालन किया है, जिसमें सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हैडमास्टर साहब को ही देखो, एम. ए. हैं कि नहीं और यहाँ के एम. ए. नहीं, आक्सफोर्ड के। एक हजार रूपए पाते हैं, लेकिन उनके घर का इंतजाम कौन करता है, उनकी बूढ़ी माँ। हैडमास्टर साहब की डिग्री यहाँ बेकार हो गई। पहले खुद घर का इंतजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। करजदार रहते थे। जबसे उनकी माता जी ने प्रबंध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई हैं। तो भाईजान, यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गए हो और अब स्वतंत्र हो। मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूँ। तुम्हें मेरी बातें जहर लग रही हैं।

मैं उनकी इस नई युक्ति से नत-मस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहब के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आँखों से कहा, हरगिज नहीं। आप जो कुछ फरमा रहे हैं, बिलकुल सच है आपको उसके कहने का अधिकार है।

भाईसाहब ने मुझे गले लगा लिया और बोले—कनकौवे उड़ाने को मना नहीं करता। मेरा जी ललचाता है, लेकिन करूँ क्या, खुद बेराह चलूँ, तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ? यह कर्त्तव्य भी तो मेरे सिर है।

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौवा हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गौल पीछे-पीछे दौड़ा आता था। भाई साहब लंबे हैं ही। उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े, मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था।



## नशा

ईश्वरी एक बड़े ज़मींदार का लड़का था और मैं गरीब क्लर्क का, जिसके पास मेहनत-मजदूरी के सिवा और कोई जायदाद न थी। हम दोनों में परस्पर बहसें होती रहती थीं। मैं जमींदार की बुराई करता, उन्हें हिंसक पशु और खून चूसनेवाली जोंक और वृक्षों की चोटी पर फूलनेवाला बंझा कहता। वह जमींदारों का पक्ष लेता; पर स्वभावतः उसका पहलू कुछ कमजोर होता था, क्योंकि उसके पास जमींदारों के अनुकूल कोई दलील न थी। यह कहना कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते, छोटे-बड़े हमेशा होते रहते हैं और होते रहेंगे, लचर दलीलें थीं। किसी मानुषीय या नैतिक नियम से इस व्यवस्था का औचित्य सिद्ध करना कठिन था। मैं इस वाद-विवाद की गर्मा-गर्मी में अक्सर तेज हो जाता और लगनेवाली बातें कह जाता; लेकिन ईश्वरी हारकर भी मुसकुराता रहता था। मैंने उसे कभी गर्म होते नहीं देखा। शायद इसका कारण यह था कि वह अपने पक्ष की कमजोरी समझता था। नौकरों से वह सीधे मुँह बात न करता था। अमीरों में जो एक बेदर्दी और उद्दंडता होती है, उसका उसे भी प्रचुर भाग मिला था। नौकर ने बिस्तर लगाने में जरा भी देर की, दूध जरूरत से ज्यादा गर्म या ठंडा हुआ, साइकिल अच्छी तरह साफ नहीं हुई, तो वह आपे से बाहर हो जाता। सुस्ती या बदतमीजी उसे जरा भी बर्दाश्त न थी, पर दोस्तों से और विशेषकर मुझसे उसका व्यवहार सौहार्द और नम्रता से भरा होता था। शायद उसकी जगह मैं होता, तो मुझमें भी वही कठोरताएँ पैदा हो जातीं, जो उसमें थीं, क्योंकि मेरा लोक-प्रेम सिद्धांतों पर नहीं, निजी दशाओं पर टिका हुआ था; लेकिन वह मेरी जगह होकर भी शायद अमीर ही रहता, क्योंकि वह प्रकृति से ही विलासी और ऐश्वर्य-प्रिय था।

अबकी दशहरे की छुट्टियों में मैंने निश्चय किया कि घर न जाऊँगा। मेरे पास किराए के लिए रूपए न थे और न मैं घरवालों को तकलीफ नहीं देना चाहता था। मैं जानता हूँ, वे मुझे जो कुछ देते हैं, वह उनकी हैसियत से बहुत ज्यादा हाता है। इसके साथ ही परीक्षा का भी खयाल था। अभी बहुत-कुछ पढ़ना बाकी था और घर जाकर कौन पढ़ता है। बोर्डिंग हाउस में भूत की तरह अकेले पड़े रहने को भी जी न चाहता था। लेकिन जब ईश्वरी ने मुझे अपने घर चलने का न्यौता दिया, तो मैं बिना आग्रह के राजी हो गया। ईश्वरी के साथ परीक्षा की तैयारी खूब हो जाएगी। वह अमीर होकर भी मेहनती और जहीन है।

उसने इसके साथ ही कहा—लेकिन भाई, एक बात का खयाल रखना। वहाँ अगर जमींदारों की निंदा की तो मामला बिगड़ जाएगा और मेरे घरवालों को बुरा लगेगा। वे लोग तो असामियों पर इसी दावे से शासन करते हैं कि ईश्वर ने असामियों को उनकी सेवा के लिए ही पैदा किया है। असामी भी यही समझता है। अगर उसे सुझा दिया जाए कि जमींदार और असामी में कोई मौलिक भेद नहीं है, तो जमींदारी का कहीं पता न लगे।

मैंने कहा—तो क्या तुम समझते हो कि मैं वहाँ जाकर कुछ और हो जाऊँगा?

‘हाँ, मैं तो यही समझता हूँ।’

‘तो तुम गलत समझते हो।’

ईश्वरी ने इसका कोई जवाब न दिया। कदाचित् उसने इस मुआमले को मेरे विवेक पर छोड़ दिया और बहुत अच्छा किया। अगर वह अपनी बात पर अड़ता, तो मैं भी जिद पकड़ लेता।

सेकेंड क्लास तो क्या, मैंने कभी इंटर क्लास में भी सफर न किया था। अबकी सेकेंड क्लास में सफर करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गाड़ी तो नौ बजे रात को आती थी, पर यात्रा के हर्ष में हम शाम को ही स्टेशन जा पहुँचे।

कुछ देर इधर-उधर सैर करने के बाद रिफ्रेशमेंट-रूम में जाकर हम लोगों ने भोजन किया। मेरी वेश-भूषा और रंग-ढंग से पारखी खानसामों को यह पहचानने में देर न लगी कि मालिक कौन है, पिछलग्गू कौन; लेकिन न जाने क्यों मुझे उनकी गुस्ताखी बुरी लग रही थी। पैसे ईश्वरी के जेब से गए। शायद मेरे पिता को जो वेतन मिलता है, उससे ज्यादा इन खानसामों को इनाम-इकराम में मिल जाता हो। एक अठन्नी तो चलते समय ईश्वरी ही ने दे दी। फिर भी मैं उन सबों से उसी तत्परता और विनय की प्रतीक्षा करता था, जिससे वे ईश्वरी की सेवा कर रहे थे। ईश्वरी के हुक्म पर सब-के-सब क्यों दौड़ते हैं, लेकिन मैं कोई चीज माँगता हूँ तो उतना उत्साह नहीं दिखाते? मुझे भोजन में कुछ स्वाद न मिला। वह भेद मेरे ध्यान को संपूर्ण रूप से अपनी ओर खींचे हुए था।

गाड़ी आई, हम दोनों सवार हुए। खानसामों ने ईश्वरी को सलाम किया। मेरी ओर देखा भी नहीं।

ईश्वरी ने कहा— कितने तमीजदार हैं ये सब। एक हमारे नौकर हैं कि कोई काम करने का ढंग नहीं।

मैंने खट्टे मन से कहा— इसी तरह अगर तुम अपने नौकरों को भी आठ आने रोज इनाम दिया करो तो शायद इससे ज्यादा तमीजदार हो जाएँ।

‘तो क्या तुम समझते हो, यह सब केवल इनाम के लालच से इतनी इज्जत करते हैं?’

‘जी नहीं, तमीज और अदब तो इनके रक्त में है।’

गाड़ी चली। डाक थी। प्रयाग से चली तो प्रतापगढ़ जाकर रूकी। एक आदमी ने हमारा कमरा खोला। मैं तुरंत चिल्ला उठा— दूसरा दरजा है— सेकेंड क्लास है।

उस मुसाफिर ने डब्बे के अंदर आकर मेरी ओर एक विचित्र उपेक्षा की दृष्टि से देखकर कहा, ‘जी हाँ, सेवक भी इतना समझता है, और बीच वाली बर्थ पर बैठ गया। मुझे कितनी लज्जा आई, कह नहीं सकता।’

भोर होते-होते हम लोग मुरादाबाद पहुँचे। स्टेशन पर कई आदमी हमारा स्वागत करने

के लिए खड़े थे। दो भद्र पुरुष थे। पाँच बेगार। बेगारों ने हमारा लगेज उठाया। दोनों भद्र पुरुष पीछे-पीछे चले। एक मुसलमान था, रियासत अली; दूसरा ब्राह्मण था, रामहरख। दोनों ने मेरी ओर अपरिचित नेत्रों से देखा, मानो कह रहे हों, तुम कौवे होकर हंस के साथ कैसे? '

रियासत अली ने ईश्वरी से पूछा—यह बाबू साहब क्या आपके साथ पढ़ते हैं?

ईश्वरी ने जवाब दिया—हाँ, साथ पढ़ते भी हैं, और साथ रहते भी हैं। यों कहिए कि आप ही की बदौलत मैं इलाहाबाद में पड़ा हुआ हूँ, नहीं तो कब का लखनऊ चला आया होता। अबकी बार मैं इन्हें घसीट लाया। इनके घर से कई तार आ चुके थे; मगर मैंने इनकारी जवाब दिलवा दिए। आखिरी तार तो अर्जेंट था, जिसकी फीस चार आने प्रति शब्द है!

दोनों सज्जनों ने मेरी ओर चकित नेत्रों से देखा। आतंकित हो जाने की चेष्टा करते हुए जान पड़े।

रियासत अली ने अर्द्धशंका के स्वर में कहा—लेकिन आप बड़े सादे लिबास में रहते हैं।

ईश्वरी ने शंका निवारण की—महात्मा गांधी के भक्त हैं साहब! खदर के सिवा कुछ पहनते ही नहीं। पुराने सारे कपड़े जला डाले! यों कहो कि राजा हैं। ढाई लाख सालाना की रियासत है; पर आपकी मूरत देखो तो मालूम होता है, अभी अनाथालय से पकड़कर आए हैं।

रामहरख बोले—अमीरों का ऐसा स्वभाव बहुत कम देखने में आता है। कोई भाँप नहीं सकता।

रियासत अली ने समर्थन किया—आपने महाराज चांगली को देखा होता, तो दाँतों तले उँगली दबाते। एक गाढ़े की बंडी और चमरौधे जूते पहने बाजारों में घूमा करते थे। सुनते हैं, एक बार बेगार में पकड़े गए थे।

मैं मन में कटा जा रहा था, पर न जाने क्या बात थी कि यह सफेद झूठ उस वक्त मुझे हास्यास्पद न जान पड़ा। उसके प्रत्येक वाक्य के साथ मानो मैं उस कल्पित वैभव के समीप आता जाता था।

मैं शहसवार नहीं हूँ। हाँ, लड़कपन में कई बार लहू घोड़ों पर सवार हुआ हूँ। यहाँ देखा तो दो घोड़े हमारे लिए तैयार खड़े थे। मेरी तो जान ही निकल गई। सवार तो हुआ; पर बोटियाँ काँप रही थीं। मैंने चेहरे पर शिकन न पड़ने दी। घोड़े को ईश्वरी के पीछे डाल दिया। खैरियत यह हुई कि ईश्वरी ने घोड़े को तेज न किया, वरना शायद मैं हाथ-पाँव तुड़वाकर लौटता। संभव है, ईश्वरी ने समझ लिया हो कि वह कितने पानी में है।

ईश्वरी का घर क्या था, किला था। इमामबाड़े का-सा फाटक, द्वार पर पहरेदार टहलता हुआ, नौकरों का कोई हिसाब नहीं, एक हाथी बँधा हुआ। ईश्वरी ने अपने पिता, चाचा, ताऊ आदि सबसे मेरा परिचय कराया और उसी अतिशयोक्ति के साथ। ऐसी हवा बाँधी कि कुछ न पूछिए। नौकर-चाकर ही नहीं, घर के लोग भी मेरा सम्मान करने लगे। देहात के जमींदार, लाखों का मुनाफा, मगर पुलिस कांस्टेबिल को भी अफसर समझने वाले। कई महाशय तो मुझे हुजूर-हुजूर कहने लगे।

जब जरा एकांत हुआ तो मैंने ईश्वरी से कहा—तुम बड़े शैतान हो यार, मेरी मिट्टी क्यों पलीद कर रहे हो?

ईश्वरी ने सुदृढ़ मुस्कान के साथ कहा—इन गधों के सामने यही चाल जरूरी थी; वरना सीधे मुँह बोलते भी नहीं।

जरा देर बाद एक नाई हमारे पाँव दबाने आया। कुँवर लोग स्टेशन से आए हैं, थक गए होंगे। ईश्वरी ने मेरी ओर इशारा करके कहा—पहले कुँवर साहब के पाँव दबा।

मैं चारपाई पर लेटा हुआ था। मेरे जीवन में शायद ही कभी किसी ने मेरे पाँव दबाए हों। मैं इसे अमीरों के चोंचले, रईसों का गधापन और जाने क्या-क्या कहकर ईश्वरी का परिहास किया करता और आज मैं रईस बनने का स्वाँग भर रहा था।

इतने में दस बज गए। पुरानी सभ्यता के लोग थे। नई रोशनी अभी केवल पहाड़ की चोटी तक पहुँच पाई थी। अंदर से भोजन का बुलावा आया। हम स्नान करने चले। मैं हमेशा अपनी धोती खुद छाँट लिया करता हूँ; मगर यहाँ मैंने ईश्वरी की ही भाँति अपनी धोती भी छोड़ दी। अपने हाथों अपनी धोती छाँटते शर्म आ रही थी। अंदर भोजन करने चले। होटल में जूते पहने मेज पर डटते थे। यहाँ पाँव धोना आवश्यक था। कहार पानी लिए खड़ा था। ईश्वरी ने पाँव बढ़ा दिए। कहार ने उसके पाँव धोए। मैंने भी पाँव बढ़ा दिए। कहार ने मेरे पाँव भी धोए। मेरा वह विचार न जाने कहाँ चला गया था।

सोचा था, वहाँ देहात में एकाग्र होकर खूब पढ़ेंगे, पर सारा दिन सैर-सपाटे में कट जाता था। कहीं नदी में बजरे पर सैर कर रहे हैं, कहीं मछलियों या चिड़ियों का शिकार खेल रहे हैं, कहीं पहलवानों की कुश्ती देख रहे हैं, कहीं शतरंज पर जमे हैं। ईश्वरी खूब अंडे मँगवाता और कमरे में 'स्टोव' पर आमलेट बनते। नौकरों का एक जत्था हमेशा घेरे रहता। अपने हाथ-पाँव हिलाने की कोई जरूरत नहीं। केवल जबान हिला देना काफी है। नहाने बैठे तो आदमी नहलाने को हाजिर, लेटे तो आदमी पंखा झलने को खड़े।

मैं महात्मा गांधी का कुँवर चेला मशहूर था। भीतर से बाहर तक मेरी धाक थी। नाश्ते में जरा भी देर न होने पाए, कहीं कुँवर साहब नाराज न हो जाएँ, बिछावन ठीक समय पर लग जाए, कुँवर साहब के सोने का समय आ गया। मैं ईश्वरी से भी ज्यादा नाजुक दिमाग बन गया था, या बनने पर मजबूर किया गया था। ईश्वरी अपने हाथ से बिस्तर बिछा ले; लेकिन कुँवर मेहमान अपने हाथों से कैसे अपना बिछावन बिछा सकते हैं! उनकी महानता में बढ़ा लग जाएगा।

एक दिन सचमुच ऐसा ही हुआ। ईश्वरी घर में था। शायद अपनी माता जी से कुछ बातचीत करने में देर हो गई। यहाँ दस बज गए। मेरी आँखें नींद से झपक रही थीं, मगर बिस्तर कैसे लगाऊँ? कुँवर जो ठहरा। कोई साढ़े ग्यारह बजे महारा आया। बड़ा मुँहलगा नौकर था। घर के धंधों में मेरा बिस्तर लगाने की उसे सुधि ही न रही। अब याद आई, तो भागा हुआ आया। मैंने ऐसी डाँट बताई कि उसने भी याद किया होगा।

ईश्वरी मेरी डाँट सुनकर बाहर निकल आया और बोला—तुमने बहुत अच्छा किया।

यह सब हरामखोर इसी व्यवहार के योग्य हैं।

इसी तरह ईश्वरी एक दिन एक जगह दावत में गया हुआ था। शाम हो गई, पर लैंप न जला। लैंप मेज पर रखा हुआ था। दियासलाई भी वहीं थी, लेकिन ईश्वरी खुद कभी लैंप नहीं जलाता था। फिर कुँवर साहब कैसे जलाएँ? मैं झुँझला रहा था। समाचार-पत्र आया रखा हुआ था। जी उधर लगा हुआ था, पर लैंप नदारद। दैवयोग से उसी वक्त मुंशी रियासत अली आ निकले। मैं उन्हीं पर उबल पड़ा, ऐसी फटकार बताई कि बेचारा उल्लू हो गया—तुम लोगों को इतनी फिक्र भी नहीं कि लैंप जलवा दो। मालूम नहीं, ऐसे कामचोर आदमियों की यहाँ कैसे गुजर होती है। मेरे यहाँ घंटेभर निर्वाह न हो।

रियासत अली ने काँपते हुए हाथों से लैंप जला दिया।

वहाँ एक ठाकुर अक्सर आया करता था। कुछ मनचला आदमी था, महात्मा गांधी का परम भक्त। मुझे महात्मा जी का चेला समझकर मेरा बड़ा लिहाज करता था, पर मुझसे कुछ पूछते संकोच करता था। एक दिन मुझे अकेला देखकर आया और हाथ बाँधकर बोला—सरकार तो गांधी बाबा के चेले हैं न? लोग कहते हैं कि यहाँ सुराज हो जाएगा तो जमींदार न रहेंगे।

मैंने शान जमाई-जमींदारी के रहने की जरूरत ही क्या है? ये लोग गरीबों का खून चूसने के सिवा और क्या करते हैं? '

ठाकुर ने फिर पूछा—तो क्या सरकार, सब जमींदारों की जमीन छीन ली जाएगी?

मैंने कहा—बहुत से लोग खुशी से दे देंगे। जो लोग खुशी से न देंगे उनकी जमीन छीननी ही पड़ेगी। हम लोग तो तैयार बैठे हुए हैं। ज्यों ही स्वराज्य हुआ, अपने सारे इलाके असामियों के नाम कर देंगे।'

मैं कुरसी पर पाँव लटकाए बैठा था। ठाकुर मेरे पाँव दबाने लगा। फिर बोला—आजकल जमींदार लोग बड़ा जुलुम करते हैं, सरकार। हमें भी हुजूर अपने इलाके में थोड़ी-सी जमीन दे दें, तो चलकर वहीं आपकी सेवा में रहें।

मैंने कहा—अभी तो मेरा कोई अख्तियार नहीं है, भाई, लेकिन ज्यों ही अख्तियार मिला, मैं सबसे पहले तुम्हें बुलाऊँगा। तुम्हें मोटर-ड्राइवरी सिखाकर अपना ड्राइवर बना लूँगा।'

सुना, उस दिन ठाकुर ने खूब भंग पी और अपनी स्त्री को खूब पीटा और गाँव के महाजन से लड़ने को तैयार हो गया।

छुट्टी इस तरह समाप्त हुई और हम फिर प्रयाग चले आए। गाँव के बहुत-से लोग हम लोगों को पहुँचाने आए। ठाकुर तो हमारे साथ स्टेशन तक आया। मैंने भी अपना पार्ट खूब सफाई से खेला और अपनी विनय और देवत्व की मुहर हरेक के हृदय पर लगा दी। जी तो चाहता था, हरेक को अच्छा इनाम दूँ, लेकिन ऐसी सामर्थ्य कहाँ थी? वापसी टिकट था ही, केवल गाड़ी में बैठना था, पर गाड़ी आई तो ठसाठस भरी हुई। दुर्गा पूजा की छुट्टियाँ बिताकर सभी लोग लौट रहे थे। सेकेंड क्लास में तिल रखने की जगह नहीं। इंटर क्लास की हालत उससे भी बदतर। यह आखिरी गाड़ी थी। किसी तरह रुक न सकते थे। बड़ी मुश्किल से तीसरे दर्जे में जगह मिली। हमारे ऐश्वर्य ने वहाँ अपना रंग जमा लिया; मगर मुझे उसमें

बैठना बुरा लग रहा था। आए थे आराम से लेटे-लेटे, जा रहे थे सिकुड़े हुए। पहलू बदलने की भी जगह न थी।

कई आदमी पढ़े-लिखे भी थे। आपस में अँग्रेजी राज्य की तारीफ करते जा रहे थे। एक महाशय बोले—ऐसा न्याय तो किसी राज्य में नहीं देखा। छोटे-बड़े सब बराबर। राजा भी किसी पर अन्याय करे, तो अदालत उसकी भी गर्दन दबा देती है।

दूसरे सज्जन ने समर्थन किया—अरे साहब, आप खुद बादशाह पर दावा कर सकते हैं।

एक आदमी, जिसकी पीठ पर बड़ा-सा गट्ठर बँधा था, कलकत्ते जा रहा था। कहीं गठरी रखने की जगह न मिली थी। पीठ पर बाँधे हुए था। इससे बेचैन होकर बार-बार द्वार पर खड़ा हो जाता। मैं द्वार के पास ही बैठा हुआ था। उसका बार-बार आकर मेरे मुँह को अपनी गठरी से रगड़ना मुझे बहुत बुरा लग रहा था। एक तो हवा यों की कम थी, दूसरे उस गँवार का आकर मेरे मुँह पर खड़ा हो जाना, मानो मेरा गला दबाना था। मैं कुछ देर तक जब्त किए बैठा रहा। एकाएक मुझे क्रोध आ गया। मैंने उसे पकड़कर ढकेल दिया और दो तमाचे जोर-जोर से लगाए।

उसने आँखें निकालकर कहा—क्यों मारते हो बाबूजी, हमने भी किराया दिया है।

मैंने उठकर दो-तीन तमाचे और जड़ दिए। गाड़ी में तूफान आ गया। चारों ओर से मुझ पर बौछार पड़ने लगी।

‘इतने नाजुक मिजाज हो तो पहले दर्जे में क्यों नहीं बैठे?’

‘कोई बड़ा आदमी होगा तो अपने घर का होगा। मुझे इस तरह मारते, तो दिखा देता।’

‘क्या कसूर किया था बेचारे ने? गाड़ी में साँस लेने की जगह नहीं, खिड़की पर जरा साँस लेने को खड़ा हो गया तो उस पर इतना क्रोध। अमीर होकर क्या आदमी अपनी इंसानियत बिलकुल खो देता है?’

‘यह भी अँग्रेजी राज है, जिसके आप गुण गा रहे थे।’

एक ग्रामीण बोला—दफतरन माँ घुस पावत नहीं, उस पर इत्ता मिजाज।

ईश्वरी ने अँग्रेजी में कहा—हवाट ऐन ईडियट यू आर, बीर! (What an idiot you are, Bir)

और मेरा नशा कुछ-कुछ उतरता हुआ महसूस होता था।

## लाग-डाट

जोखू भगत और बेचन चौधरी में तीन पीढ़ियों से अदावत चली आती थी। कुछ डांड-मेड़ का झगड़ा था। उसके परदादों में कई बार खून-खच्चर हुआ। बापों के समय से मुकदमेबाजी शुरू हुई। दोनों कई बार हाईकोर्ट तक गए। लड़कों के समय में संग्राम की भीषणता और भी बढ़ी। यहाँ तक कि दोनों ही अशक्त हो गए। पहले दोनों इसी गाँव में आधे-आधे के हिस्सेदार थे। अब उनके पास झगड़े वाले खेत को छोड़कर एक अंगुल भी जमीन न थी। भूमि गई, धन गया, मानमर्यादा गई, लेकिन वह विवाद ज्यों-का-त्यों बना रहा। हाईकोर्ट के धुरंधर नीतिज्ञ एक मामूली-सा झगड़ा तय न कर सके।

इन दोनों सज्जनों ने गाँव को दो विरोधी दलों में विभक्त कर दिया था। एक दल की भंग-बूटी चौधरी के द्वार पर छनती तो दूसरे दल के चरस-गाँजे के दम भगत के द्वार पर लगते थे। स्त्रियों और बालकों के भी दो-दो दल हो गए थे। यहाँ तक कि दोनों सज्जनों के सामाजिक और धार्मिक विचारों में भी विभाजक रेखा खिंची हुई थी। चौधरी कपड़े पहने सत्तू खा लेते और भगत को ढोंगी कहते। भगत बिना कपड़े उतारे पानी भी न पीते और चौधरी को भ्रष्ट बतलाते। भगत सनातन-धर्मी बने तो चौधरी ने आर्यसमाज का आश्रय लिया। जिस बजाज, पंसारी या कुंजड़े से चौधरी सौदा लेते, उसकी ओर भगत जी ताकना भी पाप समझते थे और भगत जी के हलवाई की मिठाइयाँ, उनके ग्वाले का दूध और तेली का तेल चौधरी के लिए त्याज्य था। यहाँ तक कि उनके आरोग्य के सिद्धांतों में भी भिन्नता थी। भगत जी वैद्यक के कायल थे, चौधरी यूनानी प्रथा को मानने वाले थे। दोनों चाहे रोग से मर जाते पर अपने सिद्धांतों को न छोड़ते।

जब देश में राजनीतिक आंदोलन शुरू हुआ तो उसकी भनक उस गाँव में भी पहुँची। चौधरी ने आंदोलन का पक्ष लिया, भगत उसके विपक्षी हो गए। एक सज्जन ने आकर गाँव में किसान सभा खोली। चौधरी उसमें शरीक हुए, भगत अलग रहे। जागृति और बढ़ी, स्वराज्य की चर्चा होने लगी। चौधरी स्वराज्यवादी हो गए, भगत ने राज्यभक्ति का पक्ष लिया। चौधरी का घर स्वराज्यवादियों का अड्डा हो गया, भगत का घर राज्यभक्तों का क्लब बन गया।

चौधरी जनता में स्वराज्यवाद का प्रचार करने लगे—मित्रो, स्वराज्य का अर्थ है अपना राज्य। अपने देश में अपना राज्य हो तो वह अच्छा है कि किसी दूसरे का राज हो, वह?

जनता ने कहा—अपना राज हो, वह अच्छा है।

चौधरी—तो स्वराज्य कैसे मिलेगा? आत्मबल से, पुरुषार्थ से, मेल से। एक-दूसरे से द्वेष छोड़ दो, अपने झगड़े आप निपटा लो।

एक शंका—आप तो नित्य अदालत में खड़े रहते हैं।

चौधरी—हाँ, पर आज से अदालत जाऊँ तो मुझे गऊहत्या का पाप लगे। तुम्हें चाहिए कि तुम अपनी गाढ़ी कमाई अपने बाल-बच्चों को खिलाओ, और बचे तो परोपकार में लगाओ, वकील-मुख्तारों की जेब क्यों भरते हो? थानेदार को घूस क्यों देते हो, अमलों की चिरौरी क्यों करते हो? पहले हमारे लड़के अपने धर्म की शिक्षा पाते थे, वे सदाचारी, त्यागी, पुरूषार्थी बनते थे। अब वे विदेशी मदरसों में पढ़कर चाकरी करते हैं, घूस खाते हैं, शौक करते हैं। अपने देवताओं और पितरों की निंदा करते हैं, सिगरेट पीते हैं, बाल बनाते हैं और हाकिमों की गोड़धरिया करते हैं। क्या यही हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि हम अपने बालकों को धर्मानुसार शिक्षा दें?

जनता—चंदे से पाठशाला खोलनी चाहिए।

चौधरी—हम पहले मदिरा छूना पाप समझते थे, अब गाँव-गाँव और गली-गली में मदिरा की दूकानें हैं। हम अपनी गाढ़ी कमाई के करोड़ों रूपए गाँजे-शराब में उड़ा देते हैं।

जनता—जो दारू-भाँग पिये, उसे डाँटना चाहिए।

चौधरी—हमारे दादा, बाबा, छोटे-बड़े सब गाढ़ा-गंजी पहनते थे। हमारी दादी, नानी चरखा काता करती थीं। सब धन देश में रहता था। हमारे जुलाहे भाई चैन की बंशी बजाते थे। अब हम विदेश के बने हुए महीन रंगीन कपड़ों पर जान देते हैं। इसी तरह दूसरे देशवाले हमारा धन ढो ले जाते हैं। बेचारे जुलाहे कंगाल हो गए। क्या हमारा यही धर्म है कि अपने भाइयों की थाली छीनकर दूसरों के सामने रख दें?

जनता—गाढ़ा कहीं मिलता ही नहीं।

चौधरी—अपने घर का बना हुआ गाढ़ा पहनो, अदालतों को त्यागो, नशेबाजी छोड़ो, अपने लड़कों को धर्म-कर्म सिखाओ, मेल से रहो, बस यही स्वराज्य है। जो कहते हैं कि स्वराज्य के लिए खून की नदी बहेगी, वे पागल हैं। उनकी बातों पर ध्यान मत दो।

जनता यह बात बड़े चाव से सुनती थी, दिनों-दिन श्रोताओं की संख्या बढ़ती जाती थी। चौधरी सबके श्रद्धाभाजन बन गए।

भगत भी राजभक्ति का उपदेश करने लगे—भाइयो, राजा का काम राज्य करना है और प्रजा का काम उसकी आज्ञा पालन करना है, इसी को राज्यभक्ति कहते हैं और हमारे धार्मिक ग्रंथों में हमें इसी राजभक्ति की शिक्षा दी गई है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है, उसकी आज्ञा के विरुद्ध चलना महान पातक है। राज-विमुख प्राणी नरक का भागी होता है।

एक शंका—राजा को भी अपने धर्म का पालन करना चाहिए।

दूसरी शंका—हमारे राजा तो नाम के हैं, असली राजा तो विलायत के बनिए महाजन हैं।

तीसरी शंका—बनिए धन कमाना जानते हैं, राज करना क्या जानें।

भगतजी—लोग तुम्हें शिक्षा देते हैं कि अदालतों में मत जाओ, पंचायतों में मुकदमे ले जाओ, ऐसे पंच कहाँ हैं, जो सच्चा न्याय करें, दूध का दूध, पानी का पानी कर दें। यहाँ मुँह-देखी बातें होंगी, जिनका दबाव है, उनकी जीत होगी। जिनका कुछ दबाव नहीं है वे बेचारे मारे जाएँगे। अदालतों में सब कार्यवाई कानून से होती है, वहाँ छोटे-बड़े सब बराबर हैं, शेर-बकरी एक घाट पानी पीते हैं। इन अदालतों को त्यागना अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना है।



एक शंका—अदालतों में जाएँ तो रूपयों की थैली कहाँ से लाएँ?

दूसरी शंका—अदालतों का न्याय कहने ही को है, जिसके पास बने हुए गवाह और दाँव-पेंच खेले हुए वकील होते हैं, उसी की जीत होती है, झूठे-सच्चे की परख कौन करता है, हाँ हैरानी अलबत्ता होती है।

भगत—कहा जाता है कि विदेशी चीजों का व्यवहार मत करो। यह गरीबों के साथ घोर अन्याय है। हमें बाजार में जो चीज सस्ती और अच्छी मिले, वह लेनी चाहिए, चाहे स्वदेशी हो या विदेशी। हमारा पैसा सेंट में नहीं आता कि भद्दी-भद्दी स्वदेशी चीजों पर फेंकें।

एक शंका—पैसा अपने देश में तो रहता है, दूसरों के हाथ में तो नहीं जाता।

दूसरी शंका—अपने घर में अच्छा खाना न मिले तो क्या विजातियों के घर अच्छा भोजन करने लगेँगे?

भगत—लोग कहते हैं कि लड़कों को सरकारी मदरसों में मत भेजो। सरकारी मदरसों में न पढ़ते तो आज हमारे भाई बड़ी-बड़ी नौकरियाँ कैसे पाते? बड़े-बड़े कारखाने कैसे चलते? बिना नई विद्या पढ़े संसार में निर्वाह नहीं हो सकता, पुरानी विद्या पढ़कर पत्रा देखने और कथा बाँचने के सिवा और क्या आता है? राज-काज क्या वही पोथी बाँचने वाले लोग करेंगे?

एक शंका—हमें राज-काज नहीं चाहिए। हम अपनी खेती-बारी ही में मगन हैं, तो किसी के गुलाम तो नहीं।

दूसरी शंका—जो विद्या घमंडी बना दे, उससे मूर्ख ही अच्छा। यह नई विद्या पढ़कर लोग सूट-बूट, घड़ी-छड़ी, हैट-कोट लगाने लगते हैं। अपने शौक के पीछे देश का धन विदेशियों की जेब में भरते हैं। ये देश के द्रोही हैं।

भगत—गाँजा-शराब की ओर आजकल लोगों की कड़ी निगाह है। नशा बुरी बात है सब जानते हैं। सरकार को नशे की दुकानों से करोड़ों रूपए साल की आमदनी होती है। अगर दुकानों में न जाने से लोगों की नशे की लत छूट जाए तो बड़ी अच्छी बात है। लेकिन लती की लत कहीं छूटती है? वह दुकान पर न जाए तो चोरी-छिपे किसी-न-किसी तरह दोगुने-चौगुने दाम देकर, सजा काटने पर तैयार होकर अपनी लत पूरी करेगा। ऐसा काम क्यों करो कि सरकार का नुकसान अलग हो और गरीब रैयत का नुकसान अलग हो। और फिर किसी-किसी का नशा खाने से फायदा होता है। मैं ही एक दिन अफीम न खाऊँ तो गाँठों में दर्द होने लगे, दम उखड़ जाए और सरदी पकड़ ले।

एक आवाज—शराब पीने से बदन में फुर्ती आ जाती है।

एक शंका—सरकार अधर्म से रूपया कमाती है, उसे यह उचित नहीं है। अधर्म के राज्य में रहकर प्रजा का कल्याण कैसे हो सकता है?

दूसरी शंका—पहले दारू पिलाकर पागल बना दिया। लत पड़ी तो पैसे की चोरी हुई। इतनी मजदूरी किसको मिलती है कि रोटी-कपड़ा भी चले और दारू-शराब भी उड़े। या तो बाल-बच्चों को भूखा मारो या चोरी करो, जुआ खेलो और बेईमानी करो। शराब की दुकान क्या है, हमारी गुलामी का अड्डा है।

चौधरी के उपदेश सुनने के लिए जनता टूटती थी। लोगों को खड़े होने की जगह न मिलती। दिनोंदिन चौधरी का नाम बढ़ने लगा; उनके यहाँ पंचायत की, राष्ट्रोन्नति की चर्चा रहती। जनता को इन बातों से बड़ा आनंद और उत्साह होता। उनके राजनीतिक ज्ञान की वृद्धि होती। वे अपना गौरव और महत्त्व समझने लगे, उन्हें अपनी सत्ता का अनुभव होने लगा। निरंकुशता और अन्याय पर उनकी तयौरियाँ चढ़ने लगीं। उन्हें स्वतंत्रता का स्वाद मिला। घर की रूई, घर का सूत, घर का कपड़ा, घर का भोजन, घर की अदालत, न पुलिस का भय, न अमलों की खुशामद, सुख और शांति से जीवन व्यतीत करने लगे। कितने ही ने नशेबाजी छोड़ दी और सद्भाव की एक लहर-सी दौड़ने लगी।

लेकिन भगत जी इतने भाग्यशाली न थे। जनता को दिनोंदिन उनके उपदेशों से अरुचि होती जा रही थी। यहाँ तक कि बहुधा उनके श्रोताओं में पटवारी, चौकीदार, मुदरिस और इन्हीं कर्मचारियों के मेली-मित्रों के अतिरिक्त और कोई न होता था, कभी-कभी बड़े हामिक भी आ निकलते और भगत जी का बड़ा आदर-सत्कार करते, जरा देर के लिए भगत जी के आँसू पुँछ जाते, लेकिन क्षणभर का सम्मान आठों पहर के अपमान की बराबरी कैसे करता! जिधर निकल जाते उधर ही उँगलियाँ उठने लगतीं। कोई कहता खुशामदी टट्टू है, कोई कहता खुफिया पुलिस का भेदी है। भगत जी अपने प्रतिद्वंद्वी की बड़ाई और अपनी लोक-निंदा पर दाँत पीसकर रह जाते। जीवन में यह पहला अवसर था कि उन्हें अपने शत्रु के सामने नीचा देखना पड़ा। चिरकाल से जिस कुल-मर्यादा की रक्षा करते आए थे। और जिस पर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे, वह धूल में मिल गई। यह दाहमय चिंता उन्हें एक क्षण के लिए चैन न लेने देती थी। नित्य यही समस्या सामने रहती कि अपना खोया हुआ सम्मान क्योंकर पाऊँ, अपने प्रतिपक्षी को क्योंकर पददलित करूँ? उसका गरूर क्योंकर तोड़ूँ?

अंत में उन्होंने सिंह को उसकी माँद में पछाड़ने का निश्चय किया। संध्या का समय था। चौधरी के द्वार पर एक बड़ी सभा में उपदेश हो रहे थे। आसपास के गाँव के किसान भी आ गए थे। हजारों आदमियों की भीड़ लगी थी। चौधरी उन्हें स्वराज्य—विषयक उपदेश दे रहे थे। बारंबार भारतमाता की जयकार की ध्वनि उठती थी। एक ओर स्त्रियों का जमाव था। चौधरी ने अपना उपदेश समाप्त किया और अपनी गद्दी पर बैठे। स्वयंसेवकों ने स्वराज्य फंड के लिए चंदा करना शुरू किया कि इतने में भगत जी न जाने किधर से लपकते हुए आए और श्रोताओं के सामने खड़े होकर उच्च स्वर में बोले—भाइयो, मुझे यहाँ देखकर अचरज मत करो, मैं स्वराज्य का विरोधी नहीं हूँ। ऐसा पतित कौन होगा, जो प्राणी स्वराज्य का निंदक हो, लेकिन इसके प्राप्त करने का वह उपाय नहीं है, जो चौधरी ने बतलाया है और जिस पर तुम लोग लट्टू हो रहे हो। जब आपस में फूट और रार है तो पंचायतों से क्या होगा? जब विलासिता का भूत सर पर सवार है तो वह कैसे हटेगा, मदिरा की दुकानों का बहिष्कार कैसे होगा? सिगरेट, साबुन, मौजे, बनियान, अब्दी, तंजेब से कैसे पिंड छूटेगा? जब रौब और हुकूमत की लालसा बनी हुई है तो सरकारी मदरसे कैसे छोड़ोगे? विधर्मी शिक्षा की बेड़ी से कैसे मुक्त हो सकोगे? स्वराज्य लाने का केवल एक ही उपाय है और वह वह आत्म-संयम

है। यही महौषधि तुम्हारे समस्त रोगों को समूल नष्ट करेगी। आत्मा की दुर्बलता ही पराधीनता का मुख्य कारण है, आत्मा को बलवान बनाओ, इंद्रियों को साधो, मन को वश में करो, तभी तुम में भ्रातृ-भाव पैदा होगा, तभी नशेबाजी का दमन होगा। आत्मबल के बिना स्वराज्य कभी उपलब्ध न होगा। स्वार्थ सब पापों का मूल है, यही तुम्हें अदालतों में ले जाता है, यही तुम्हें विधर्मी शिक्षा का दास बनाए हुए है। इस पिशाच को आत्मबल से मारो और तुम्हारी कामना पूरी हो जाएगी। सब जानते हैं, मैं पचास साल से अफीम का सेवन करता हूँ, आज से अफीम को गौ का रक्त समझता हूँ। चौधरी से मेरी तीन पीढ़ियों से अदावत है, आज से चौधरी मेरे भाई हैं। आज से मेरे घर के किसी प्राणी को घर के कते सूत के बने कपड़े के सिवाय कुछ और पहने देखो तो मुझे जो दंड चाहो दो। बस, मुझे यही कहना है। परमात्मा हम सबकी इच्छा पूरी करें।

यह कहकर भगत जी घर की ओर चले कि चौधरी दौड़कर उनके गले में लिपट गए। तीन पुश्तों की अदावत एक ही क्षण में शांत हो गई।

उस दिन से चौधरी और भगत साथ-साथ स्वराज्य का उपदेश करने लगे। उनमें गाढ़ी मित्रता हो गई और यह निश्चय करना कठिन था कि दोनों में जनता किसका सम्मान करती है। प्रतिद्वंद्विता की चिनगारी ने दोनों पुरुषों के हृदय-दीपक को प्रकाशित कर दिया था।

## आत्माराम

बेदों ग्राम में महादेव सोनार सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायबान में प्रातः से संध्या तक अंगीठी के सामने बैठा हुआ खट्खट किया करता था। यह लगातार ध्वनि सुनने के लोग इतने अभयस्त हो गए कि जब किसी कारण से वह बंद हो जाती, तो जान पड़ता था, कोई चीज गायब हो गई है। वह नित्यप्रति एक बार प्रातःकाल अपने तोते का पिंजड़ा लिए, कोई भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाता था। उस धुँधले प्रकाश में उसका जर्जर शरीर, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर देखकर किसी अपरिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था। ज्यों ही लोगों के कानों में आवाज आती—‘सत्त गुरूदत्त शिवदत्त दाता’, लोग समझ जाते कि भोर हो गया।

महादेव का पारिवारिक जीवन-सुखमय न था, उसके तीन पुत्र थे, तीन बहुएँ थीं, दर्जनों नाती-पोते थे, लेकिन उसके बोझ को हल्का करने वाला कोई न था। लड़के कहते—जब तक दादा जीते हैं, हम जीवन का आनंद भोग लें, फिर तो ढोल गले में पड़ेगा ही। बेचारे महादेव को कभी-कभी निराहार ही रहना पड़ता। भोजन के समय उसके घर में साम्यवाद का ऐसा गगन-भेदी निर्घोष होता कि वह भूखा ही उठ आता और नारियल का हुक्का पीता हुआ सो जाता। उसका व्यावसायिक जीवन और अशांतिकारक था। यद्यपि वह अपने काम में निपुण था, उसकी खटाई औरों से कहीं ज्यादा शुद्धिकारक और उसकी रासायनिक क्रियाएँ कहीं ज्यादा कष्टसाध्य थीं, तथापि उसे आएदिन शक्की और धैर्यशून्य प्राणियों के अपशब्द सुनने पड़ते थे। पर महादेव अविचलित गांभीर्य से सिर झुकाए सब कुछ सुना करता। ज्यों ही वह कलह शांत होता, वह अपने तोते की ओर देखकर पुकार उठता—‘सत्त गुरूदत्त शिवदत्त दाता।’ इस मंत्र के जपते ही उसके चित्त को पूर्ण शांति प्राप्त हो जाती थी।

एक दिन संयोग से किसी लड़के ने पिंजड़े का द्वार खोल दिया। तोता उड़ गया। महादेव ने सिर उठाकर जो पिंजड़े की ओर देखा तो उसका कलेजा सन्न से हो गया। तोता कहाँ गया। उसने फिर पिंजड़े को देखा, तोता गायब था। महादेव घबराकर उठा और इधर-उधर खपरैलों पर निगाह दौड़ाने लगा। उसे संसार में कोई वस्तु अगर प्यारी थी तो वह यही तोता। लड़केवालों, नाती-पोतों से उसका जी भर गया था। लड़कों की चुलबुल से उसके काम में विघ्न पड़ता था। बेटों से उसे प्रेम न था; इसलिए नहीं कि वे निकम्मे थे, बल्कि इसलिए कि उनके कारण वह अपने आनंदमयी कुल्हड़ों की नियमित संख्या से वंचित रह जाता था। पड़ोसियों से उसे चिढ़ थी, इसलिए कि वह उसकी अंगीठी से आग निकालकर ले जाते थे। इन समस्त विघ्न-बाधाओं से उसके लिए कोई पनाह थी, तो वह यही तोता। इससे उसे किसी प्रकार का कष्ट न होता था। वह अब उस अवस्था में था, जब मनुष्यों को शांति-भोग के सिवा और कोई इच्छा नहीं रहती।

तोता एक खपरैल पर बैठा था। महादेव ने पिंजड़ा उतार लिया और उसे दिखाकर कहने लगा, 'आ आ, सत्त गुरुदत्त दाता।' लेकिन गाँव और घर के लड़के एकत्र होकर चिल्लाने और तालियाँ बजाने लगे। ऊपर से कौओं ने काँव-काँव की रट लगाई, तोता उड़ा और गाँव के बाहर निकलकर एक पेड़ पर जा बैठा। महादेव खाली पिंजड़ा लिए उसके पीछे दौड़ा, सो दौड़ा। लोगों को उसकी द्रुतगामी पर अचंभा हो रहा था। मोह की इससे सुंदर, इससे सजीव, इससे भावमय कल्पना नहीं की जा सकती।

दोपहर हो गई, किसान लोग खेतों से चले आ रहे थे। उन्हें विनोद का अच्छा अवसर मिला। महादेव को चिढ़ाने में सभी को मजा आता था। किसी ने कंकड़ फेंके, किसी ने तालियाँ बजाई, तोता फिर उड़ा और वहाँ से दूर आम के बाग के एक पेड़ की फुनगी पर जा बैठा। महादेव फिर खाली पिंजड़ा लिए मेढक की भाँति उचका चला। बाग में पहुँचा, तो पैर के तलुओं से आग निकल रही थी; सिर चक्कर खा रहा था। जब जरा सावधान हुआ, तो फिर पिंजड़ा उठाकर कहने लगा, 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।' तोता फुनगी से उतरकर नीचे की एक डाल पर आ बैठा, किंतु महादेव की ओर सशंक नेत्रों से ताक रहा था। महादेव ने समझा डर रहा है। वह पिंजड़ा छोड़कर आप एक दूसरे पेड़ की आड़ में छिप गया। तोते ने चारों ओर गौर से देखा। निःशंक हो गया, उतरा और आकर पिंजड़े के ऊपर बैठ गया। महादेव का हृदय उछलने लगा। 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' का मंत्र जपता हुआ, धीरे-धीरे, तोते के समीप आया और लपका कि तोते को पकड़ ले; किंतु तोता हाथ न आया, फिर पेड़ पर जा बैठा।

शाम तक यही हाल रहा। तोता कभी इस डाल पर जाता, कभी उस डाल पर, कभी पिंजड़े पर आ बैठता, कभी पिंजड़े के द्वार पर बैठ अपने दाने-पानी की प्यालियों को देखता और फिर उड़ जाता। बुढ़ा अगर मूर्तिमान मोह था, तो तोता मूर्तिमयी माया। यहाँ तक कि शाम हो गई। माया और मोह का यह संग्राम अंधकार में विलीन हो गया।

रात हो गई। चारों ओर निविड़ अंधकार छा गया। तोता न जाने पत्तों में कहाँ छिपा बैठा था। महादेव जानता था कि रात को तोता कहीं उड़ कर नहीं जा सकता, और न पिंजड़े में आ सकता है, फिर भी वह उस जगह से हिलने का नाम न लेता था। आज उसने दिन-भर कुछ नहीं खाया, रात के भोजन का समय भी निकल गया, पानी की एक बूँद भी उसके कंठ में न गई; लेकिन उसे न भूख थी, न प्यास। तोते के बिना उसे अपना जीवन निस्सार, शुष्क और सूना जान पड़ता। वह दिन-रात काम करता था, इसलिए कि यह उसकी अंतःप्रेरणा थी, जीवन के और काम इसलिए करता था कि आदत थी। इन कामों में उसे अपनी सजीवता का लेशमात्र भी ज्ञान न होता था। तोता ही वह वस्तु थी, जो उसे चेतना की याद दिलाती थी। उसका हाथ से जाना जीवन का देह-त्याग करना था।

महादेव दिन-भर का भूखा-प्यासा, थका-मांदा रह-रहकर झपकियाँ ले लेता था; किंतु एक क्षण में फिर चौंककर आँखें खोल देता और उस विस्तृत अंधकार में उसकी आवाज सुनाई देती—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।'

आधी रात गुजर रही थी। सहसा वह कोई आहट पाकर चौंका। देखा, एक-दूसरे वृक्ष के

नीचे एक धुँधला दीपक जल रहा है और कई आदमी बैठे हुए आपस में कुछ बातें कर रहे हैं। वे सब चिलम पी रहे थे। तमाखू की महक ने उसे अधीर कर दिया। उच्चस्वर में बोला, 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता', और उन आदमियों की ओर चिलम पीने चला, किंतु जिस प्रकार बंदूक की आवाज सुनते ही हिरन भाग जाते हैं, उसी प्रकार उसे आते देख वे सबके सब उठकर भागे। कोई इधर गया, कोई उधर। महादेव चिल्लाने लगा, 'ठहरो-ठहरो!' एकाएक उसे ध्यान आ गया, ये सब चोर हैं। वह जोर से चिल्ला उठा-चोर-चोर पकड़ो-पकड़ो! चोरों ने पीछे फिरकर भी न देखा।

महादेव दीपक के पास गया तो उसे एक कलसा रखा हुआ मिला। मोरचे से काला हो रहा था। महादेव का हृदय उछलने लगा। उसने कलसे में हाथ डाला, तो मोहरें थीं। उसने एक मोहर बाहर निकाली और दीपक के उजाले में देखा, हाँ मोहर थी। उसने तुरंत कलसा उठा लिया और दीपक बुझा दिया और पेड़ के नीचे छिपकर बैठ रहा। साहूकार से चोर बन गया।

उसे फिर शंका हुई, ऐसा न हो, चोर लौटकर आएँ और मुझे अकेला देखकर मोहरें छीन लें। उसने कुछ मोहरें कमर में बाँधी, फिर एक सूखी लकड़ी से जमीन की मिट्टी हटाकर कई गड्ढे बनाए, उन्हें मोहरों से भरकर मिट्टी से ढक दिया।

महादेव के अंतर्नेत्रों के सामने अब एक दूसरा ही जगत था-चिंताओं और कल्पनाओं से परिपूर्ण। यद्यपि अभी कोष के हाथ से निकल जाने का भय था, पर अभिलाषाओं ने अपना काम शुरू कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफे की एक भारी दुकान खुल गई, निज संबंधियों से फिर नाता जुड़ गया, विलास-सामग्रियाँ एकत्र हो गईं। तब तीर्थयात्रा करने चले और वहाँ से लौटकर बड़े समारोह से यज्ञ, ब्रह्म-भोज हुआ। इसके पश्चात् एक शिवालय और कुआँ बन गया और वहाँ वह नित्यप्रति कथा-पुराण सुनने लगा। साधु-संतों का आदर सत्कार होने लगा।

अकस्मात् उसे ध्यान आया, कहीं चोर आ जाएँ तो मैं भागूँगा क्योंकर? उसने परीक्षा करने के लिए कलसा उठाया, और दो सौ पग तक बेतहाशा भागता हुआ चला गया। जान पड़ता था, उसके पैरों में पर लग गए हैं, चिंता शांत हो गई। कल्पनाओं में रात व्यतीत हो गई। उषा का आगमन हुआ, हवा जगी, चिड़ियाँ गाने लगीं। सहसा महादेव के कानों में आवाज आई-

सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,  
राम के चरन में चित्त लगा।

यह बोल महादेव की जिह्वा पर रहता था। दिन में सहस्रों बार ये शब्द उसके मुख से निकलते थे, पर उसका धार्मिक भाव कभी उसके अंतःकरण को स्पर्श न करता था। जैसे कि बाजे से राग निकलता है, उसी प्रकार उसके मुँह से वह निकलता था, निरर्थक और प्रभाव-शून्य। तब उसका हृदय-रूपी वृक्ष पत्र-पल्लव विहीन था। यह निर्मल वायु उसे गुंजारित न कर सकती थी। पर अब उस वृक्ष में कोपलें और शाखाएँ निकल आयी थीं, इस वायु-प्रवाह से झूम उठा, गुंजित हो गया।

अरूणोदय का समय था। प्रकृति एक अनुरागमय प्रकाश में डूबी हुई थी। उसी समय

तोता पैरों को जोड़े हुए ऊँची डाली से उतरा, जैसे आकाश से कोई तारा टूटे और आकर पिंजड़े पर बैठ गया। महादेव प्रफुल्लित हो दौड़ा, और पिंजड़े को उठाकर बोला, 'आओ आत्माराम, तुमने कष्ट तो बहुत दिया, पर मेरा जीवन भी सफल कर दिया। अब तुम्हें चाँदी के पिंजड़े में रखूँगा और सोने से मढ़ दूँगा।' उसके रोम-रोम से परमात्मा के गुणानुवाद की ध्वनि निकलने लगी। प्रभु, तुम कितने दयावान् हो! यह तुम्हारा वात्सल्य है, नहीं तो मुझ-जैसा पापी-पतित प्राणी कब इस कृपा के योग्य था? इन पवित्र भावों में उसकी आत्मा विह्वल हो गई। वह अनुरक्त होकर कह उठा—

सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,  
राम के चरन में चित्त लगा।

उसने एक हाथ में पिंजड़ा लटकाया, बगल में कलसा दबाया और घर चला।

महादेव घर पहुँचा तो अभी कुछ अँधेरा था। रास्ते में एक कुत्ते के सिवा और किसी से भेंट न हुई और कुत्ते को मोहरों से विशेष प्रेम नहीं था। उसने कलसे को एक नाँद में छिपा दिया और उसे कोयले से अच्छी तरह ढाँककर अपनी कोठरी में रख आया। जब दिन निकल आया, तो वह सीधे पुरोहित जी के घर पहुँचा। पुरोहित जी पूजा पर बैठे सोच रहे थे—कल ही मुकदमे की पेशी है, और अभी तक हाथ में कौड़ी भी नहीं। जजमानों में कोई साँस भी नहीं लेता। इतने में महादेव ने पालागन की। पंडितजी ने मुँह फेर लिया। यह अमंगल-मूर्ति कहाँ से आ पहुँची। मालूम नहीं, दाना भी मयस्सर होगा या नहीं। रूष्ट होकर पूछा—क्या है जी; क्या कहते हो? जानते नहीं, हम इस समय पूजा पर रहते हैं? महादेव ने कहा—महाराज, आज मेरे यहाँ सत्यनारायण की कथा है।

पुरोहित जी विस्मित हो गए। कानों पर विश्वास न हुआ। महादेव के घर कथा का होना उतनी ही असाधारण घटना थी, जितनी अपने घर से किसी भिखारी के लिए भीख निकालना। पूछा—आज क्या है?

महादेव बोला—कुछ नहीं, ऐसे ही इच्छा हुई कि आज भगवान की कथा सुन लूँ।

प्रभात से ही तैयारी होने लगी। बेदों और अन्य निकटवर्ती गाँव में सुपारी फिरी। कथा के उपरांत भोज का भी नेवता था। जो सुनता आश्चर्य करता, यह आज रेत में दूब कैसे जमी!

संध्या के समय जब सब लोग जमा हो गए, पंडित जी सिंहासन पर विराजमान हुए तो महादेव खड़ा होकर उच्च स्वर में बोला, 'भाइयो, मेरी सारी उम्र छल-कपट में कट गई। मैंने न जाने कितने आदमियों को दगा दी, कितना खरे का खोटा किया, पर अब भगवान ने मुझ पर दया की है, वह मेरे मुँह की कालिख मिटाना चाहते हैं। मैं आप सभी भाइयों से ललकार कर कहता हूँ कि जिसका मेरे जिम्मे जो कुछ निकलता हो, जिसकी जमा मैंने मार ली हो, जिसके चोखे माल को खोटा कर दिया हो, वह आकर अपनी एक-एक कौड़ी चुका ले। अगर कोई यहाँ न आ सका हो तो आप लोग उससे जाकर कह दीजिए, कल से एक महीने तक जब जी चाहे आए और अपना हिसाब चुकता कर ले। गवाही—साखी का काम नहीं।

सब लोग सन्नाटे में आ गए। कोई मार्मिक भाव से सिर हिलाकर बोला—हम कहते न थे! किसी ने अविश्वास से कहा-क्या खाकर भरेगा, हजारों का टोटल हो जाएगा।

एक ठाकुर ने ठठोली की—और जो सुरधाम चले गए?

महादेव ने उत्तर दिया—उनके घर वाले तो होंगे?

किंतु इस समय लोगों को वसूली की इतनी इच्छा न थी, जितनी यह जानने की कि इसे इतना धन मिल कहाँ से गया? किसी को महादेव के पास आने का साहस न हुआ। देहात के आदमी थे, गड़े मुर्दे को उखाड़ना क्या जानें! फिर प्रायः लोगों को याद भी था कि उनहूँ महादेव से क्या पाना है और ऐसे पवित्र अवसर पर भूल-चूक हो ही जाने का भय उनका मुँह बंद किए हुए था। सबसे बड़ी बात यह थी कि महादेव की साधुता ने उन्हें वशीभूत कर लिया था।

अचानक पुराहित जी बोले—तुम्हें याद है, मैंने एक कंठा बनाने के लिए सोना दिया था और तुमने कई माशे तोल में उड़ा दिए थे।

महादेव—हाँ, याद है आपका कितना नुकसान हुआ होगा?

पुराहित—पचास रूपए से कम न होगा।

महादेव ने कमर से दो मोहरें निकालीं और पुरोहित जीके सामने रख दीं।

पुरोहित की लोलुपता पर टीकाएँ होने लगीं—यह बेइमानी है, बहुत होगा तो दो-चार रूपए का नुकसान हुआ होगा। बेचारे से पचास रूपए ऐंठ लिए। नारायण का भी डर नहीं। बनने को पंडित, पर नीयत ऐसी खराब! राम-राम!

लोगों को महादेव पर एक श्रद्धा-सी हो गई। एक घंटा बीत गया; पर उन सहस्रों मनुष्यों में एक भी न खड़ा हुआ। तब महादेव ने फिर कहा—मालूम होता है, आप लोग अपना-अपना हिसाब भूल गए हैं। इसलिए आज कथा होने दीजिए, मैं एक महीने तक आपकी राह देखूँगा। इसके पीछे तीर्थ-यात्रा करने चला जाऊँगा। आप सब भाइयों से मेरी विनती है कि आप मेरा उद्धार करें।

एक महीना तक महादेव लेनदारों की राह देखता रहा। रात को चोरों के भय से नींद न आती। अब वह कोई काम न करता। शराब का चसका भी छूटा। साधु-अभ्यागत जो द्वार पर आ जाते, उनका यथायोग्य सत्कार करता। दूर-दूर उसका सुयश फैल गया। यहाँ तक कि एक महीना पूरा हो गया और एक आदमी भी हिसाब लेने न आया। अब महादेव को ज्ञात हुआ कि संसार बुरों के लिए बुरा है, और अच्छों के लिए अच्छा।

इस घटना को हुए पचास वर्ष बीत चुके हैं। आप बेदों जाइए तो दूर ही से एक सुनहरा कलस दिखाई देता है। यह ठाकुरद्वारे का कलस है। उससे मिला हुआ एक पक्का तालाब है, जिसमें खूब कमल खिले हैं। उसकी मछलियाँ कोई नहीं पकड़ता। तालाब के किनारे एक विशाल समाधि है। यही आत्माराम का स्मृति-चह्न है। उनके संबंध में विभिन्न किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कोई कहता है रत्न-जटित पिंजड़ा स्वर्ग को चला गया। कोई कहता है कि उस पक्षी रूपी चंद्र को किसी बिल्ली—रूपी राहू ने ग्रस लिया। लोग कहते हैं, आधी रात को अभी तक तालाब के किनारे आवाज आती है—

सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,

राम के चरन में चित्त लगा।



महादेव के विषय में भी कितनी ही जन-श्रुतियाँ हैं। उनमें सबसे मान्य यह है कि आत्माराम के समाधिस्थ होने के बाद वह कई संन्यासियों के साथ हिमालय चला गया और वहाँ से लौटकर न आया। उसका नाम आत्माराम प्रसिद्ध हो गया।

## प्रेरणा

मेरी कक्षा में सूर्यप्रकाश से ज्यादा ऊधमी कोई लड़का न था। बल्कि यों कहो कि अध्यापन-काल के दस वर्षों में मुझे ऐसी विषम प्रकृति के शिष्य से साबका न पड़ा था। कपट-क्रीड़ा में उसकी जान बसती थी। अध्यापकों को बनाने और चिढ़ाने, उद्योगी बालकों को छेड़ने और रूलाने में ही उसे आनंद आता था। ऐसे-ऐसे षड्यंत्र रचता, ऐसे-ऐसे फंदे डालता, ऐसे-ऐसे मनसूबे बाँधता कि देखकर आश्चर्य होता था। गिरोहबंदी में अभ्यस्त था।

खुदाई फौजदारों कि एक फौज बना ली थी और उसके आतंक से शाला पर शासन करता था। मुख्य अधिष्ठाता का आज्ञा टल जाए, मगर क्या मजाल कि कोई उसके हुक्म कि अवज्ञा कर सके! स्कूल के चपरासी और अर्दली उससे थर-थर काँपते थे। इंस्पेक्टर का मुआइना होने वाला था। मुख्य अधिष्ठाता ने हुक्म दिया कि लड़के निर्दिष्ट समय से आधा घंटा पहले आ जाएँ। मतलब यह था कि लड़कों को मुआइने के बारे में कुछ जरूरी बातें बता दी जाएँ। मगर दस बज गए, इंस्पेक्टर साहब आकर बैठ गए और मदरसे में एक लड़का भी नहीं। ग्यारह बजे सब छात्र इस तरह निकल पड़े, जैसे पिंजड़ा खोल दिया हो। इंस्पेक्टर साहब ने कैफियत में लिखा-डिसिप्लिन बहुत खराब है। प्रिंसिपल साहब की किरकिरी हुई, अध्यापक बदनाम हुए और यह सारी शरारत सूर्यप्रकाश की थी। मगर बहुत पूछताछ करने पर किसी ने सूर्यप्रकाश का नाम तक नहीं लिया। मुझे अपनी संचालन-विधि पर गर्व था। ट्रेनिंग कॉलेज में इस विषय में मैंने ख्याति प्राप्त की थी। मगर यहाँ मेरा सारा संचालन-कौशल मोर्चा खा गया था। कुछ अक्ल ही काम नहीं करती कि शैतान को कैसे मार्ग पर लाएँ। कई बार अध्यापकों की बैठक हुई, पर यह गिरह न खुली। नई शिक्षा विधि के अनुसार मैं दंड-नीति का पक्षपाती न था, मगर हम यहाँ इस नीति से केवल विरक्त थे कि कहीं उपचार रोग से भी असाध्य न हो जाए। सूर्यप्रकाश को स्कूल से निकाल देने का प्रस्ताव भी किया गया, पर इसे अपनी अयोग्यता का प्रमाण समझकर हम इस नीति का व्यवहार करने का साहस न कर सके। बीस-बाईस अनुभवी और शिक्षण-शास्त्र के आचार्य एक बारह-तेरह साल के उद्विग्न बालक का सुधार न कर सकें, यह विचार बहुत ही निराशाजनक था। यों तो सारा स्कूल उससे त्राहि-त्राहि करता था, मगर सबसे ज्यादा संकट में मैं था, क्योंकि वह मेरी कक्षा का छात्र था, और उसकी शरारतों का कुफल मुझे भोगना पड़ता था। मैं स्कूल आता तो हरदम यही खटका लगा रहता था कि देखें आज क्या विपत्ति आती है। एक दिन मैंने अपनी मेज की दराज खोली, तो उसमें एक बड़ा सा मेढक निकल पड़ा। मैं चौंकर पीछे हटा, तो क्लास में एक शोर मच गया। उसकी ओर सरोष नेत्रों से देखकर रह गया। सारा घंटा उपदेश में बीत गया और वह पटपट सीर झुकाए नीचे मुसकुरा रहा था। मुझे आश्चर्य होता था कि यह नीचे कि कक्षाओं में कैसे पास हुआ! एक दिन मैंने गुस्से से कहा

—तुम इस कक्षा से उम्र भर नहीं पास हो सकते। सूर्यप्रकाश ने अविचलित भाव से कहा—  
आप मेरे पास होने की चिंता न करें। मैं हमेशा पास हुआ हूँ और अब भी हो जाऊँगा।

‘असंभव।’

‘असंभव संभव हो जाएगा।’

मैं साश्चर्य उसका मुँह देखने लगा। जहीन-से-जहीन लड़का भी अपनी सफलता का दावा इतने निर्विवाद रूप से न कर सकता था। मैंने सोचा, वह प्रश्न-पत्र उड़ा लेता होगा। मैंने प्रतिज्ञा की, अबकी इसकी एक चाल भी न चलने दूँगा। देखूँ, कितने दिन इस कक्षा में पड़ा रहता है। आप घबड़ाकर निकल जाएगा।

वार्षिक परीक्षा के अवसर पर मैंने असाधारण देखभाल से काम लिया, मगर जब सूर्यप्रकाश का उत्तर-पत्र देखा, तो मेरे विस्मय की सीमा न रही। मेरे दो पर्चे थे, दोनों में ही उसके नंबर कक्षा में सबसे अधिक थे। मुझे खूब मालूम था कि वह मेरे किसी पर्चे का कोई भी प्रश्न हल नहीं कर सकता। मैं इसे सिद्ध कर सकता था, मगर उसके उत्तर-पत्रों को क्या करता? लिपि में इतना भेद न था, जो कोई संदेह उत्पन्न कर सकता। मैंने प्रिंसिपल से कहा, तो वह भी चकरा गए, मगर उन्हें भी जान-बूझकर मक्खी निगलनी पड़ी। मैं कदाचित् स्वभाव से ही निराशावादी हूँ। अन्य अध्यापकों को मैं सूर्यप्रकाश के विषय में जरा भी चिंतित न पाता था। मानो ऐसे लड़कों का स्कूल में आना कोई नई बात नहीं, मगर मेरे लिए वह एक विकट रहस्य था। अगर यही ढंग रहे, तो एक दिन वह या तो जेल में होगा या पागलखाने में।

उसी साल मेरा तबादला हो गया। यद्यपि यहाँ की जलवायु मेरे अनुकूल थी, प्रिंसिपल और अन्य अध्यापकों से मैत्री हो गई थी, मगर मैं अपने तबादले से खुश हुआ, क्योंकि सूर्यप्रकाश मेरे मार्ग का काँटा न रहेगा। लड़कों ने मुझे विदाई की दावत दी, और सबके सब स्टेशन तक पहुँचाने आए। उस वक्त सभी लड़के आँखों में आँसू भरे हुए थे। मैं भी अपने आँसुओं को न रोक पाया। सहसा मेरी निगाह सूर्यप्रकाश पर पड़ी, जो सबसे पीछे लज्जित खड़ा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी आँखें भी भीगी थीं। मेरा जी बार-बार चाहता था कि चलते-चलते उससे दो-चार बात कर लूँ। शायद वह भी मुझसे कुछ कहना चाहता था, मगर न मैंने पहले बातें कीं, न उसने; हालाँकि मुझे बहुत दिनों तक इसका खेद रहा। उसकी झिझक तो क्षमा योग्य थी, पर मेरा अवरोध अक्षम्य था। संभव था, उस करुणा और ग्लानि की दशा में मेरी दो-चार निष्कपट बातें उसके दिल पर असर कर जातीं, मगर इन्हीं खोए हुए अवसरों का नाम तो जीवन है। गाड़ी मंद गति से चली। लड़के कई कदम उसके साथ दौड़े। मैं खिड़की से बाहर सिर निकाले खड़ा था। कुछ देर तक मुझे उनके हिलते हुए रूमाल नजर आए। फिर वे रेखाएँ आकाश में विलीन हो गईं, मगर एक अल्पकाय मूर्ति अब भी प्लेटफार्म पर खड़ी थी। मैंने अनुमान किया, वह सूर्यप्रकाश है। उस समय मेरा हृदय किसी विकल कैदी की भाँति घृणा, मालिन्य और उदासीनता के बंधनों को तोड़-तोड़कर उससे गले मिलने के लिए तड़प उठा।

नए स्थान की नई चिंताओं ने बहुत जल्दी मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

पिछले दिनों कि याद एक हसरत बनकर रह गई। न किसी का कोई खत आया, न मैंने कोई खत लिखा। शायद दुनिया का यही दस्तूर है। वर्षा के बाद वर्षा की हरियाली कितने दिनों रहती है? संयोग से मुझे इंग्लैंड में विद्याभ्यास करने का अवसर मिल गया। वहाँ तीन साल लग गए। वहाँ से लौटा, तो एक कॉलेज का प्रिंसिपल बना दिया गया। यह सिद्धि मेरे लिए बिलकुल आशातीत थी। मेरी भावना स्वप्न में भी इतनी दूर नहीं उड़ी थी, किंतु पद-लिप्सा अब किसी और भी ऊँची डाली पर आश्रय लेना चाहती थी। शिक्षामंत्री से रबूत-जबूत पैदा किया। मंत्री महोदय मुझ पर कृपा रखते थे, मगर वास्तव में शिक्षा के मौलिक सिद्धांतों का उन्हें ज्ञान न था। मुझे पाकर उन्होंने सारा भार मेरे ऊपर डाल दिया। घोड़े पर सवार वह थे, लगाम मेरे हाथ में थी। फल यह हुआ कि उनके राजनीतिक विपक्षियों से मेरा विरोध हो गया। मुझ पर जा-बेजा आक्रमण होने लगे। मैं सिद्धांत रूप से अनिवार्य शिक्षा का विरोधी हूँ। मेरा विचार है कि हर एक मनुष्य को उन विषयों में ज्यादा स्वाधीनता होनी चाहिए, जिसका उससे निज का संबंध है। मेरा विचार है कि यूरोप में अनिवार्य शिक्षा कि जरूरत है, भारत में नहीं। भौतिकता पश्चिमी सभ्यता का मूल तत्त्व है। वहाँ किसी काम की प्रेरणा आर्थिक लाभ के आधार पर होती है। जिंदगी की जरूरतें ज्यादा हैं, इसलिए जीवन-संग्राम भी अधिक भीषण है। माता-पिता भोग के दास होकर बच्चों को जल्द-से-जल्द कुछ कमाने पर मजबूर करते हैं। इसकी वजह है कि वह मद का त्याग करके एक शिलिंग रोज बचत कर लें, वे अपने कमसिन बच्चे को एक शिलिंग की मजदूरी करने के लिए दबाएँगे। भारतीय जीवन में सात्त्विक सरलता है। हम उस वक्त तक अपने बच्चों से मजदूरी नहीं कराते, जब तक परिस्थिति हमें विवश न कर दे। दरिद्र-से-दरिद्र हिंदुस्तानी मजदूर भी शिक्षा के उपकारों का कायल है। उसके मन में यह अभिलाषा होती है कि मेरा बच्चा चार अक्षर पढ़ जाए। इसलिए नहीं कि उसे कोई अधिकार मिलेगा, बल्कि केवल इसलिए कि विद्या मानवी शील का श्रृंगार है। अगर यह जानकर भी वह अपने बच्चे को मदरसे नहीं भेजता, तो समझ लेना चाहिए कि वह मजबूर है। ऐसी दशा में उस पर कानून का प्रहार करना मेरी दृष्टि में न्याय-संगत नहीं है। इसके सिवाय मेरे विचार में अभी हमारे देश में योग्य शिक्षकों का अभाव है। अर्द्धशिक्षित और अल्प वेतन पानेवाले अध्यापकों से आप यह आशा नहीं कर सकते हैं कि वह कोई ऊँचा आदर्श अपने सामने रख सकें। अधिक-से-अधिक इतना ही होगा कि चार-पाँच वर्ष में बालक को अक्षर का ज्ञान हो जाएगा। मैं इसे पर्वत खोदकर चुहिया निकालने के तुल्य समझता हूँ। वयस प्राप्त हो जाने पर यह मामला एक महीने में आसानी से तय किया जा सकता है। मैं अनुभव से कह सकता हूँ कि युवावस्था में हम जितना ज्ञान एक महीने में प्राप्त कर सकते हैं, उतना बाल्यकाल में तीन साल में भी नहीं कर सकते, फिर खामख्वाह बच्चों को मदरसे में कैद करने से क्या लाभ? मदरसे के बाहर रहकर स्वच्छ वायु तो मिलती, प्राकृतिक अनुभव तो प्राप्त होते। पाठशाला में बंद करके तो आप उसके मानसिक और शारीरिक दोनों विधानों की जड़ काट देते हैं। इसलिए जब प्रांतीय व्यवस्थापिका सभा में अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव पेश हुआ, तो मेरी प्रेरणा से मिनिस्टर साहब से उसका विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। फिर क्या था? मिनिस्टर साहब

और मेरी वह ले-दे हुई कि कुछ न पूछिए। व्यक्तिगत आक्षेप किए जाने लगे। मैं गरीब की बीवी था, मुझे ही सबकी भाभी बनना पड़ा। देशद्रोही, उन्नति का शत्रु और नौकरशाही का गुलाम कहा गया। मेरे कॉलेज में जरा-सी भी कोई बात होती तो कॉउन्सिल में मुझ पर वर्षा होने लगती। मैंने चपरासी को पृथक् किया। सारी कॉउन्सिल पंजे झाड़कर मेरे पीछे पड़ गई। आखिर मिनिस्टर को मजबूर होकर उस चपरासी को बहाल करना पड़ा। यह अपमान मेरे लिए असह्य था। शायद कोई भी इसे सहन न कर सकता। मिनिस्टर साहब से मुझे शिकायत नहीं। वह मजबूर थे। हाँ, इस वातावरण में काम करना मेरे लिए दुःसाध्य हो गया। मुझे अपने कॉलेज के आंतरिक संगठन का भी अधिकार नहीं। अमुक क्यों नहीं परीक्षा में भेजा गया? अमुक के बदले अमुक को क्यों नहीं छात्रवृत्ति दी गई? अमुक अध्यापक को अमुक कक्षा क्यों नहीं दी जाती है? इस तरह के सारहीन आक्षेपों ने मेरी नाक में दम कर दिया। इस नई चोट ने कमर तोड़ दी। मैंने इस्तीफा दे दिया।

मुझे मिनिस्टर साहब से इतनी आशा अवश्य थी कि वह कम-से-कम इस विषय में न्याय-परायणता से काम लेंगे। मगर उन्होंने न्याय की जगह नीति को मान्य समझा और मुझे कई साल की भक्ति का यह फल मिला कि मैं पदच्युत कर दिया गया। संसार का ऐसा कटु अनुभव मुझे अब तक न हुआ था। ग्रह भी कुछ बुरे आ गए थे; उन्हीं दिनों पत्नी का देहांत हो गया। अंतिम दर्शन भी न कर सका। संध्या समय नदी-तट पर सैर करने गया था। वह कुछ अस्वस्थ थीं। लौटा तो उनकी लाश मिली। कदाचित् हृदय की गति बंद हो गई थी। इस आघात ने कमर तोड़ दी। माता के प्रसाद और आशीर्वाद से बड़े-बड़े महान पुरुष कृतार्थ हो गए थे। मैं जो कुछ हुआ, पत्नी के प्रसाद और आशीर्वाद से हुआ। वह मेरे भाग्य की विधात्री थीं। कितना अलौकिक त्याग था, कितना विशाल धैर्य। उनके माधुर्य में तीक्ष्णता का नाम भी न था। मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी उनकी भृकुटि संकुचित देखी हो। निराश होना तो जानती ही न थीं। मैं कई बार सख्त बीमार पड़ा हूँ। वैद्य भी निराश हो गए, पर वह अपने धैर्य और शांति से अणुमात्र भी विचलित नहीं हुई उन्हें विश्वास था कि वह अपने पति के जीवनकाल में मरेगी और वह हुआ भी। मैं जीवन में अब तक उन्हीं के सहारे खड़ा था। जब वह अवलंब ही न रहा, तो जीवन कहाँ रहता। खाने और सोने का नाम जीवन नहीं है। जीवन नाम है सदैव आगे बढ़ते रहने की लगन का। यह लगन गायब हो गई। मैं संसार से विरक्त हो गया; और एकांतवास में जीवन के दिन व्यतीत करने का निश्चय करके एक छोटे से गाँव में जा बसा। चारों तरफ़ ऊँचे-ऊँचे टीले थे, एक ओर गंगा बहती थी। मैंने नदी के किनारे एक छोटा-सा घर बना लिया और उसी में रहने लगा।

मगर काम करना तो मानवीय स्वभाव है। बेकारी में, जीवन कैसे कटता? मैंने एक छोटी-सी पाठशाला खोल ली। वह वृक्ष की छाँह में गाँव के लड़कों को जमा कर कुछ पढ़ाया करता था। उसकी यहाँ इतनी ख्याति हुई कि आस-पास के गाँवों के छात्र भी आने लगे।

एक दिन मैं अपनी कक्षा को पढ़ा रहा था कि पाठशाला के पास एक मोटर आकर रूकी और उसमें से जिले के डिप्टी कमिश्नर उतर पड़े। मैं उस समय केवल एक कुरता और धोती पहने हुए था। इस वेश में एक हाकिम से मिलते हुए शर्म आ रही थी। डिप्टी कमिश्नर मेरे

समीप आए तो मैंने झेंपते हुए हाथ बढ़ाया, मगर वह मुझसे हाथ मिलाने के बदले मेरे पैरों की ओर झुके और उन पर सिर रख दिया। मैं कुछ ऐसा सिटपिटा गया कि मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। मैं अँग्रेजी अच्छी लिखता हूँ, दर्शनशास्त्र का भी आचार्य हूँ, व्याख्यान भी अच्छे दे लेता हूँ; मगर इन गुणों में एक भी श्रद्धा के योग्य नहीं। श्रद्धा तो जानियों और साधुओं ही के अधिकार की वस्तु है। अगर मैं ब्राह्मण होता तो एक बात थी। हालाँकि एक सिविलियन का किसी ब्राह्मण के पैरों पर सिर रखना भी अतिचिंतनीय है।

मैं अभी इसी विस्मय में पड़ा हुआ था कि डिप्टी कमिश्नर ने सिर उठाया और मेरी तरफ देखकर कहा, 'आपने शायद मुझे पहचाना नहीं।'

इतना सुनते ही मेरे स्मृति-नेत्र खुल गए, बोला, 'आपका नाम सूर्यप्रकाश तो नहीं है?'

'जी हाँ, मैं आपका वही अभागा शिष्य हूँ।'

'बारह-तेरह वर्ष हो गए।'

सूर्यप्रकाश ने मुस्कुराकर कहा, 'अध्यापक लड़कों को भूल जाते हैं, पर लड़के उन्हें हमेशा याद करते हैं।'

मैंने उसी विनोद के भाव से कहा, 'तुम जैसे लड़कों को भूलना असंभव है!'

सूर्यप्रकाश ने विनीत स्वर से कहा—उन्हीं अपराधों को क्षमा कराने के लिए सेवा में आया हूँ। मैं सदैव आपकी खबर लेता रहता था। जब आप इंग्लैंड गए, तो मैंने आपके लिए कई बार बधाई पत्र लिखा, पर उसे भेज न सका। जब आप प्रिंसिपल हुए, मैं इंग्लैंड जाने को तैयार था। वहाँ मैं पत्रिकाओं में आपके लेख पढ़ता रहता था। जब लौटा तो मालूम हुआ कि आपने इस्तीफा दे दिया और कहीं देहात में चले गए। इस जिले में आए मुझे एक वर्ष से अधिक हुआ, पर इसका जरा भी अनुमान न था कि आप यहाँ एकांत सेवा कर रहे हैं। इस उजाड़ गाँव में आपका जी कैसे लगता है? इतनी ही अवस्था में आपने वानप्रस्थ ले लिया?

मैं नहीं कह सकता कि सूर्यप्रकाश की उन्नति देखकर मुझे कितना आश्चर्यचकित आनंद हुआ। अगर वह मेरा पुत्र होता, तो भी इससे अधिक आनंद न होता। मैं उसे अपने झोंपड़े में लाया और अपनी रामकहानी कह सुनाई।

सूर्यप्रकाश ने कहा, 'तो कहिए कि अपने ही एक भाई के विश्वासघात के शिकार हुए। मेरा अनुभव तो बहुत कम है, मगर इतने ही दिनों में मुझे मालूम हो गया है कि हम लोग अभी अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करना नहीं जानते। मिनिस्टर साहब से भेंट हुई, तो पूछूँगा कि क्या यही उनका धर्म था?'

मैंने जवाब दिया, 'भाई, उनका दोष नहीं। संभव है, इस दशा में मैं भी वही करता, जो उन्होंने किया। मुझे अपनी स्वार्थ-लिप्सा की सजा मिल गई और उसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। बनावट नहीं, सत्य कहता हूँ कि यहाँ मुझे जो शांति है, वह और कहीं न थी। इस एकांत जीवन में मुझे जीवन के तत्त्वों का वह ज्ञान हुआ, जो संपत्ति और अधिकार की दौड़ में किसी तरह संभव न था। इतिहास और भूगोल के पोथे चाटकर यूरोप के विद्यालयों कि शरण जाकर भी मैं अपनी ममता को न मिटा सका। बल्कि यह रोग दिन-दिन और असाध्य होता जाता था। आप सीढ़ियों पर पाँव रखे बगैर छत की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकते। संपत्ति की

अट्टालिका तक पहुँचने में दूसरी जिंदगी ही जीनों का काम देती है। आप उन्हें कुचलकर ही लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। वहाँ सौजन्य और सहानुभूति का स्थान ही नहीं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि उस वक्त मैं हिंसक जंतुओं से घिरा हुआ था और मेरी सारी शक्तियाँ अपनी आत्मरक्षा में लगी रहती थीं। यहाँ मैं अपने चारों ओर संतोष और सरलता देखता हूँ। मेरे पास जो लोग आते हैं, कोई स्वार्थ लेकर नहीं आते और न मेरी सेवाओं में प्रशंसा या गौरव की लालसा है।'

यह कहकर मैंने सूर्यप्रकाश के चेहरे की ओर गौर से देखा। कपट-मुस्कान की जगह ग्लानि का रंग था। शायद यह दिखाने आया था कि आप जिसकी तरफ से इतने निराश हो गए थे, वह अब इस पद को सुशोभित कर रहा है। वह मुझसे अपने सदुद्योग का बखान चाहता था। मुझे अब अपनी भूल मालूम हुई—एक संपन्न आदमी के सामने समृद्धि की निंदा उचित नहीं। मैंने तुरंत बात पलटकर कहा, 'मगर तुम अपना हाल तो कहो। तुम्हारी यह कायापलट कैसे हुई? तुम्हारी शरारतों को याद करता हूँ, तो अब भी रोएँ खड़े हो जाते हैं। किसी देवता के वरदान के सिवा और कहीं यह विभूति न प्राप्त हो सकती थी।'

सूर्यप्रकाश ने मुस्कुराकर कहा, 'आपका आशीर्वाद था।'

मेरे बहुत आग्रह करने पर सूर्यप्रकाश ने अपना वृत्तांत सुनाना शुरू किया। आपके चले जाने के कई दिन बाद मेरा ममेरा भाई स्कूल में दाखिल हुआ। उसकी उम्र आठ-नौ साल से ज्यादा न थी। प्रिंसिपल साहब उसे होस्टल में न लेते थे और न मामा साहब उसके ठहरने का प्रबंध कर सकते थे। उन्हें इस संकटकाल में देखकर मैंने प्रिंसिपल साहब से कहा—उसे मेरे कमरे में ठहरा दीजिए। प्रिंसिपल साहब ने इसे नियम-विरुद्ध बतलाया। इस पर मैंने बिगड़कर उसी दिन होस्टल छोड़ दिया, और एक किराये का मकान लेकर मोहन के साथ रहने लगा। उसकी माँ कई साल पहले मर चुकी थी। इतना दुबला-पतला, कमजोर और गरीब लड़का था कि पहले ही दिन से मुझे उस पर दया आने लगी। कभी उसके सिर में दर्द होता, कभी ज्वर हो जाता। आये-दिन कोई-न-कोई बीमारी खड़ी रहती थी। इधर साँझ हुई और उसे झपकियाँ आने लगीं। बड़ी मुश्किल से भोजन करने उठता। दिन चढ़ते तक सोया करता और जब तक मैं गोद में उठाकर बिठा न देता, उठने का नाम न लेता। रात को बहुधा चौंककर मेरी चारपाई पर आ जाता और मेरे गले लिपटकर सोता। मुझे उस पर कभी क्रोध न आता। कह नहीं सकता, क्यों मुझे उससे प्रेम हो गया। मैं जहाँ पहले नौ बजे सोकर उठता था, अब तड़के उठ बैठता और उसके लिए दूध गरम करता। फिर उसे उठाकर आँख-मुँह धुलाता और नाश्ता कराता। उसके स्वास्थ्य के विचार से नित्य वायु-सेवन को ले जाता। मैं जो कभी किताब लेकर न बैठता था, इसे घंटों पढ़ाया करता। मुझे अपने दायित्व का इतना ज्ञान कैसे हो गया, इसका मुझे आश्चर्य है। उसे कोई शिकायत हो जाती तो मेरे प्राण नखों में समा जाते। डॉक्टर के पास दौड़ता, दवाएँ लाता और मोहन को खुशामद करके दवा पिलाता। सदैव यही चिंता रहती थी कि कोई बात उसकी इच्छा के विरुद्ध न हो जाए। उस बेचारे का यहाँ मेरे सिवा दूसरा कौन था? मेरे चंचल मित्रों में से कोई उसे चिढ़ाता या छेड़ता तो मेरी तयोरियाँ बदल जाती थीं। कई लड़के मुझे बूढ़ी दादी कहकर चिढ़ाते थे। पर मैं

हँसकर टाल देता था। मैंने उसके सामने एक भी अनुचित शब्द मुँह से नहीं निकाला। यह शंका होती थी कि कहीं मेरी देखा-देखी यह भी खराब न हो जाए। मैं उसके सामने इस तरह रहना चाहता था कि मुझे अपना आदर्श समझे और इसके लिए यह मानी हुई बात थी कि मैं अपना चरित्र सुधारूँ। वह मेरा नौ बजे सोकर उठना, बाहर बजे तक मटरगश्ती करना, नई-नई शरारतों के मनसूबे बाँधना और अध्यापकों की आँख बचाकर स्कूल से उड़ जाना, सब आप-ही-आप जाता रहा। स्वास्थ्य और चरित्र-पालन के सिद्धांतों का मैं शत्रु था, पर अब मुझसे बढ़कर उन नियमों का रक्षक दूसरा न था। मैं ईश्वर का उपहास किया करता था, मगर अब पक्का आस्तिक हो गया था। वह बड़े सरल भाव से पूछता—परमात्मा सब जगह रहते हैं, तो मेरे साथ भी रहते होंगे? इस प्रश्न का मजाक उड़ाना मेरे लिए असंभव था। मैं कहता, हाँ, परमात्मा तुम्हारे, हमारे, सबके पास रहते हैं और हमारी रक्षा करते हैं। यह आश्वासन पाकर उसका चेहरा आनंद से खिल उठता था। कदाचित् वह परमात्मा की सत्ता का अनुभव करने लगता था। साल ही भर में मोहन कुछ-से-कुछ हो गया। मामा साहब दो बार आए, तो उसे देखकर चकित रह गए। आँखों में आँसू भरकर बोले—बेटा! तुमने इसको जिला दिया, नहीं तो मैं निराश हो चुका था। इसका पुनीत फल तुम्हें ईश्वर देंगे। इसकी माँ स्वर्ग में बैठी हुई आशीर्वाद दे रही है।

सूर्यप्रकाश की आँखें उस वक्त भी सजल हो गई थीं।

मैंने पूछा—‘मोहन तुम्हें बहुत प्यार करता होगा?’

सूर्यप्रकाश के सजल नेत्रों में हसरत से भरा हुआ आनंद चमक उठा, बोला—वह मुझे एक मिनट के लिए भी न छोड़ता था। मेरे साथ बैठता, मेरे साथ खाता, साथ सोता। मैं ही उसका सब कुछ था। आज वह संसार में नहीं है, मगर मेरे लिए वह अब भी उसी तरह जीता-जागता है। मैं जो कुछ हूँ, उसी का बनाया हुआ हूँ। अगर वह दैवी विधान की भाँति मेरा पथ-प्रदर्शक न बन जाता, तो शायद आज मैं किसी जेल में पड़ा होता। एक दिन मैंने कह दिया—अगर तुम रोज नहा न लिया करोगे, तो मैं तुमसे न बोलूँगा। नहाने से वह न जाने क्यों जी चुराता था। मेरी धमकी का फल यह हुआ कि वह नित्य प्रातःकाल नहाने लगा। कितनी ही सर्दी क्यों न हो, कितनी ही ठंडी हवा चले, लेकिन वह स्नान अवश्य करता था।

देखता रहता था, मैं किस बात से खुश होता हूँ। एक दिन मैं कई मित्रों के साथ थियेटर देखने चला गया, ताकीद कर गया कि तुम खाना खाकर सो जाना। तीन बजे रात को लौटा तो देखा, वह बैठा हुआ है। मैंने पूछा—तुम सोये नहीं? बोला—नींद नहीं आई। उसी दिन से मैंने थियेटर जाने का नाम न लिया। बच्चों में प्यार की जो भूख होती है, दूध, मिठाई और खिलौने से भी ज्यादा मादक—जो माँ की गोद के सामने संसार की निधि की भी परवाह नहीं करती, मोहन की वह भूख कभी संतुष्ट न होती थी। पहाड़ों से टकराने वाली सारस की आवाज की तरह वह सदैव उसकी नसों में गूँजा करती थी। जैसे भूमि पर फैली हुई लता कोई सहारा पाते ही उससे चिपट जाती है, वही हाल मोहन का था। वह मुझसे ऐसा चिपट गया था कि पृथक् किया जाता तो उसकी कोमल बेली के टुकड़े-टुकड़े हो जाते। वह मेरे साथ तीन साल रहा और तब जीवन में प्रकाश की एक रेखा डालकर अंधकार में विलीन हो गया। उस



जीर्ण काया में कैसे-कैसे अरमान भरे हुए थे। कदाचित् ईश्वर ने मेरे जीवन में एक अवलंबन की सृष्टि करने के लिए उसे भेजा था। उद्देश्य पूरा हो गया, तो वह क्यों रहता?

गर्मियों की तातील थी। दो तातीलों में मोहन मेरे ही साथ रहा था। मामा जी के आग्रह करने पर भी घर न गया। अब की कॉलेज के छात्रों ने काश्मीर-यात्रा करने का निश्चय किया और मुझे उसका अध्यक्ष बनाया। काश्मीर-यात्रा की अभिलाषा मुझे चिरकाल से थी। इस अवसर को गनीमत समझा। मोहन को मामा जी के पास भेजकर मैं काश्मीर चला गया। दो महीने के बाद लौटा तो मालूम हुआ कि मोहन बीमार है। काश्मीर में मुझे बार-बार मोहन की याद आती थी और जी चाहता था लौट आऊँ, मुझे उस पर इतना प्रेम है, इसका अंदाज़ा मुझे काश्मीर जाकर हुआ, लेकिन मित्रों ने पीछा न छोड़ा। उसकी बीमारी की खबर पाते ही मैं अधीर हो उठा और दूसरे ही दिन उसके पास जा पहुँचा। मुझे देखते ही उसके पीले और सूखे हुए चेहरे पर आनंद की स्फूर्ति झलक पड़ी। मैं दौड़कर उसे गले से लिपट गया। उसकी आँखों में वह दूरदृष्टि और चेहरे पर वह अलौकिक आभा थी, जो मँडराती हुई मृत्यु की सूचना देती है। मैंने आवेश से काँपते हुए स्वर में पूछा—यह तुम्हारी क्या दशा है मोहन? दो ही महीने में यह नौबत पहुँच गई। मोहन ने सरल मुस्कान के साथ कहा—आप काश्मीर की सैर करने गए थे, मैं आकाश की सैर करने जा रहा हूँ।

मगर यह दुःख-कहानी कहकर मैं रोना और रूलाना नहीं चाहता। मेरे चले जाने के बाद मोहन इतना परिश्रम से पढ़ने लगा, मानो तपस्या कर रहा हो। उसे यह धुन सवार हो गई कि साल-भर की पढ़ाई दो महीने में समाप्त कर ले और स्कूल खुलने के बाद मुझसे इस श्रम का प्रशंसा-रूपी उपहार प्राप्त करे। मैं किस तरह उसकी पीठ ठोकूँगा। शाबासी दूँगा, अपने मित्रों से बखान करूँगा, इन भावनाओं ने अपने सारे बालोचित उत्साह और तल्लीनता के साथ उसे वशीभूत कर लिया। मामा जी को दफ्तर के कामों से इतना अवकाश कहाँ कि उसके मनोरंजन का ध्यान रखें। शायद उसे प्रतिदिन कुछ-न-कुछ पढ़ते देखकर वह दिल में खुश होते थे। उसे खेलते न देखकर भला क्या कहते? फल यह हुआ कि मोहन को हलका-हलका ज्वर आने लगा, किंतु उस दशा में भी ज्वर कुछ हलका हो जाता तो किताब देखने लगता था। उसके प्राण मुझमें ही बने रहते थे। ज्वर की दशा में भी नौकरों से पूछता—भैया का पत्र आया? वह कब आएँगे? इसके सिवा और कोई दूसरी अभिलाषा न थी। अगर मुझे मालूम होता कि मेरी काश्मीर-यात्रा इतनी महँगी पड़ेगी तो उधर जाने का नाम न लेता। उसे बचाने के लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था, वह मैंने सब किया, किंतु बुखार टायफायड था, उसकी जान लेकर ही उतरा। उसके जीवन का स्वप्न मेरे लिए किसी ऋषि का आशीर्वाद बनकर मुझे प्रोत्साहित करने लगा और यह उसी का शुभ फल है कि आज आप मुझे इस दशा में देख रहे हैं। मोहन की बाल-अभिलाषाओं को प्रत्यक्ष रूप में लाकर मुझे यह संतोष होता है कि शायद उसकी पवित्र आत्मा मुझे देखकर प्रसन्न होती हो। यही प्रेरणा थी कि जिसने कठिन-से-कठिन परीक्षाओं में भी मेरा बेड़ा पार लगाया, नहीं तो मैं आज भी वही मंदबुद्धि सूर्यप्रकाश हूँ, जिसकी सूरत से आप चिढ़ते थे।

उस दिन से मैं कई बार सूर्यप्रकाश से मिल चुका हूँ। जब वह इस तरफ आ जाता है, तो

बिना मुझसे मिले नहीं जाता है। मोहन को अब भी वह अपना इष्टदेव समझता है। मानव-प्रकृति का यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे मैं आज तक नहीं समझ सका।

## सवा सेर गेहूँ

किसी गाँव में शंकर नाम का एक किसान रहता था। सीधा-सादा गरीब आदमी था, अपने काम से काम, न किसी के लेने में न देने में। छक्का-पंजा न जातना था, छल-प्रपंच की उसे छूत भी न लगी थी, ठगे जाने की चिंता न थी, ठग-विद्या न जानता था। भोजन मिला खा लिया, न मिला चबेने पर काट दी, चबेना भी न मिला तो पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो रहा। विशेषकर जब साधु-महात्मा पदार्पण करते थे तो उसे अनिवार्यतः सांसारिकता की शरण लेनी पड़ती थी। खुद भूखा सो सकता था पर साधु को कैसे भूखा सुलाता? भगवान के भक्त ठहरे।

एक दिन संध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया। तेजस्वी मूर्ति थी, पीतांबर गले में, जटा सिर पर, पीतल का कमंडल हाथ में, खड़ाऊँ पैर में, ऐनक आँखों पर। संपूर्ण वेश उन महात्माओं का-सा था, जो रईसों के प्रासादों में तपस्या, हवागाड़ियों पर देवस्थानों की परिक्रमा और योगसिद्धि प्राप्त करने के लिए रूचिकर भोजन करते हैं। घर में जौ का आटा था, वह उन्हें कैसे, खिलाता! प्राचीनकाल में जौ का चाहे जो कुछ महत्त्व रहा हो, पर वर्तमान युग में जौ का भोजन सिद्ध पुरुषों के लिए दुष्पाच्य होता है। बड़ी चिंता हुई, महात्मा जी को क्या खिलाऊँ। आखिर निश्चय किया कि कहीं से गेहूँ का आटा उधार लाऊँ, पर गाँव-भर में गेहूँ का आटा न मिला। गाँव में सब मनुष्य थे, देवता एक भी न था, अतः देवताओं का पदार्थ कैसे मिलता? सौभाग्य से गाँव के विप्र महाराज के यहाँ से थोड़े से गेहूँ मिल गए। उसने सवा सेर गेहूँ उधार लिया और स्त्री से कहा कि पीस दे। महात्मा जी ने भोजन किया, लंबी तानकर सोये। प्रातःकाल आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

विप्र महाराज साल में दो बार खलिहानी किया करते थे। शंकर ने दिल में कहा, सवा सेर गेहूँ इन्हें क्या लौटाऊँ, पसेरी के बदले कुछ ज्यादा खलिहानी दे दूँगा, यह भी समझ जाएँगे, मैं भी समझ जाऊँगा। चैत में जब विप्र जी पहुँचे तो उन्हें डेढ़ पसेरी के लगभग गेहूँ दे दिया और अपने को ऊर्ध्व समझकर उसकी कोई चरचा न की। विप्र जी ने फिर कभी न माँगा। सरल शंकर को क्या मालूम कि यह सवा सेर गेहूँ चुकाने के लिए उसे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा।

सात साल गुजर गए। विप्र जी विप्र से महाजन हुए, शंकर किसान से मजूर हो गया। उसका छोटा भाई मंगल उससे अलग हो गया था। एक साथ रहकर दोनों किसान थे, अलग होकर मजूर हो गए थे। शंकर ने चाहा कि द्वेष की आग भड़कने न पाए, किंतु परिस्थितियों ने उसे विवश कर दिया। जिस दिन अलग-अलग चूलहूँ जले, वह फूट-फूटकर रोया। आज से भाई-भाई शत्रु हो जाएँगे, एक रोएगा तो दूसरा हँसेगा, एक के घर मातम होगा तो दूसरे के घर गुलगुले पकेंगे। प्रेम का बंधन, खून का बंधन, दूध का बंधन आज

टूटा जाता है। उसने भगीरथ परिश्रम से कुलमर्यादा का वृक्ष लगाया था, उसे अपने रक्त से सींचा था, उसको जड़ से उखड़ता देखकर उसके हृदय के टुकड़े हो जाते थे। सात दिनों तक उसने दाने की सूरत नहीं देखी। दिन-भर जेठ की धूप में काम करता और रात को मुँह लपेटकर सो रहता। इस भीषण वेदना और दुस्सह कष्ट ने रक्त को जला दिया, मांस और मज्जा को घुला दिया। बीमार पड़ा तो महीनों तक खाट से न उठा। अब गुजर-बसर कैसे हो? पाँच बीघे के आधे खेत रह गए, एक बैल रह गया, खेती क्या खाक होती। अंत को यहाँ तक नौबत पहुँची कि खेती केवल मर्यादा-रक्षा का साधनमात्र रह गई। जीविका का भार मजूरी पर आ पड़ा।

सात वर्ष बीत गए, एक दिन शंकर मजूरी करके लौटा तो राह में विप्र जी ने टोककर कहा, शंकर, कल आके अपने बीज बेंग का हिसाब कर ले। तेरे यहाँ साढ़े पाँच मन गेहूँ कब से बाकी पड़े हुए हैं और तू देने का नाम नहीं लेता, हजम करने का मन है क्या?

शंकर ने चकित होकर कहा—मैंने तुमसे कब गेहूँ लिए थे, जो साढ़े पाँच मन हो गए? तुम भूलते हो, मेरे यहाँ किसी का न छटांक-भर अनाज है, न एक पैसा उधार।

विप्र—इसी नीयत का तो यह फल भोग रहे हो कि खाने को नहीं जुड़ता।

यह कहकर विप्र ने उस सवा सेर का जिक्र किया, जो आज से सात वर्ष पहले शंकर को दिया था। शंकर सुनकर अवाक् रह गया। ईश्वर! मैंने इन्हें कितनी बार खलिहानी दी, इन्होंने मेरा कौन-सा काम किया? जब पोथी-पत्रा देखने, साइत-सगुन विचारने द्वार पर आते थे, कुछ न कुछ 'दक्षिणा' ले ही जाते थे। इतना स्वार्थ! सवा सेर अनाज को अंडे की भाँति सेकर आज यह पिशाच खड़ा कर दिया, जो मुझे निगल जाएगा। इतने दिनों में एक बार भी कह देते तो मैं गेहूँ तौलकर दे देता, क्या इसी नीयत से चुप बैठे रहे। बोला—महाराज, नाम लेकर तो मैंने उतना अनाज नहीं दिया, पर कई बार खलिहानी में सेर-सेर, दो-दो सेर दिया है। अब आप साढ़े पाँच मन माँगते हैं, मैं कहाँ से दूँगा।

विप्र-लेखा जौ-जौ, बखसी सौ-सौ! तुमने जो कुछ दिया होगा, उसका कोई हिसाब नहीं। चाहे एक की जगह चार पसेरी दे दो। तुम्हारे नाम वही में साढ़े पाँच मन लिखा हुआ है, जिससे चाहो हिसाब लगवा लो। दे दो तो तुम्हारा नाम छेक दूँ, नहीं तो और भी बढ़ता रहेगा।

शंकर-पांडे, क्यों गरीब को सताते हो? मेरे खाने का ठिकाना नहीं, इतना गेहूँ किसके घर से लाऊँगा?

विप्र-जिसके घर से चाहो लाओ, मैं छटांक-भर न छोड़ूँगा, यहाँ न दोगे, भगवान के घर दोगे।

शंकर काँप उठा। पढ़े-लिखे आदमी होते तो कह देते, अच्छी बात है, ईश्वर के घर ही देंगे। वहाँ की तौल यहाँ से कुछ बड़ी तो न होगी। कम-से-कम इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं, फिर उसकी क्या चिंता। शंकर इतना तार्किक, इतना व्यवहार-चतुर न था। एक तो ऋण भी ब्राह्मण का, बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊँगा, इस खयाल से उसे रोमांच हो आया। बोला, 'महाराज, तुम्हारा जितना होगा यहीं दूँगा, ईश्वर के यहाँ क्यों दें, इस जनम में तो ठोकर खा ही रहा हूँ, उस जनम के लिए क्यों काँटे बोऊँ। मगर यह कोई

नियाब नहीं है। तुमने राई का पर्वत बना दिया, ब्राह्मण होके तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। उसी घड़ी तगादा करके ले लिया होता, तो आज मेरे सिर पर इतना बड़ा बोझ क्यों पड़ता? मैं तो दूँगा, लेकिन तुम्हें भगवान के यहाँ जवाब देना पड़ेगा।'

विप्र—वहाँ का डर तुम्हें होगा, मुझे क्यों होने लगा। वहाँ तो सब अपने ही भाई-बंधु हैं। ऋषि-मुनि तो ब्राह्मण ही हैं। जो कुछ बने-बिगड़ेगी, सभौल लेंगे। तो कब देते हो?

शंकर—मेरे पास रखा तो है नहीं। किसी से माँग-जाँचकर लाऊँगा तभी न दूँगा।

विप्र—मैं यह न मानूँगा। सात साल हो गए, अब एक दिन का भी मुलाहिजा न करूँगा। गेहूँ नहीं दे सकते, दस्तावेज लिख दो।

शंकर—मुझे तो देना है, चाहे गेहूँ लो, चाहे दस्तावेज लिखाओ। किस हिसाब से दाम रखोगे?

विप्र—बाजार भाव पाँच सेर का है, तुम्हें सवा पाँच सेर का काट दूँगा।

शंकर—जब दे ही रहा हूँ तो बाजार भाव काटूँगा, पाव भर छुड़ाकर क्यों दोषी बनूँ?

हिसाब लगाया तो गेहूँ का दाम साठ रूपए हुए। साठ रूपए का दस्तावेज लिखा गया, तीन रूपया सैकड़े सूद। साल-भर में न देने पर सूद का दर साढ़े तीन रूपए सैकड़े, बारह आने का स्टाम्प, एक रूपया दस्तावेज की तहरीर शंकर को ऊपर से देनी पड़ी।

गाँवभर ने विप्र जी की निंदा की, लेकिन मुँह पर नहीं। महाजन से सभी का काम पड़ता है, उसके मुँह कौन आए।

शंकर ने साल-भर कठिन तपस्या की। मियाद के पहले रूपया अदा करने का उसने व्रत-सा कर लिया। दोपहर को पहले भी चूल्हा न जलता था, चबेने पर बसर होती थी, अब वह भी बंद हुआ। केवल लड़के के लिए रात को रोटियाँ रख दी जातीं। पैसे रोज का तंबाकू पी जाता था। यही एक व्यसन था, जिसका वह कभी त्याग न कर सका था। अब वह व्यसन भी इस कठिन व्रत के भेंट हो गया। उसने चिलम पटक दी, हुक्का तोड़ दिया और तंबाखू की हाँडी चूर-चूर कर डाली। कपड़े पहले ही त्याग की चरम सीमा तक पहुँच चुके थे, अब वह प्रकृति की न्यूनतम रेखाओं में आबद्ध हो गए। उसने समझा, पंडित जी को इतने रूपए दूँगा और कहूँगा, महाराज, बाकी रूपए भी जल्दी ही आपके सामने हाजिर करूँगा। पंद्रह रूपए की तो और बात है, क्या पंडित जी इतना भी न मानेंगे? उसने रूपए लिए और ले जाकर पंडित जी के चरण कमलों पर अर्पण कर दिए। पंडित जी ने विस्मित होकर पूछा—किसी से उधार लिए क्या?

शंकर—नहीं महाराज, आपके असीस से अब की मजूरी अच्छी मिली।

विप्र—लेकिन यह तो साठ रूपए ही हैं।

शंकर—हाँ महाराज, इतने अभी लीजिए, बाकी दो-तीन महीने में दूँगा, मुझे उरिन कर दीजिए।

विप्र—उरिन तो तभी होंगे जब मेरी कौड़ी-कौड़ी चुका दोगे। जाकर मेरे पंद्रह रूपए और लाओ।

शंकर—महाराज, इतनी दया करो, अब साँझ की रोटियों का भी ठिकाना नहीं है, गाँव में

हूँ तो कभी-न-कभी दे ही दूँगा।

विप्र—मैं यह रोग नहीं पालता, न बहुत बातें करना जानता हूँ। अगर पूरे रूपए न मिलेंगे तो आज से साढ़े तीन रूपए सैकड़े का ब्याज लगेगा। अपने रूपए चाहे अपने घर में ही रखो, चाहे मेरे यहाँ छोड़ जाओ।

शंकर—अच्छा, जितना लाया हूँ उतना रख लीजिए। जाता हूँ, कहीं से पंद्रह रूपये और लाने की फिक्र करता हूँ।

शंकर ने सारा गाँव छान मारा, मगर किसी ने रूपए न दिए, इसलिए नहीं कि उसका विश्वास न था, या किसी के पास रूपया न था, बल्कि इसलिए कि पंडित जी के शिकार को छेड़ने की किसी में हिम्मत न थी।

क्रिया के पश्चात् प्रतिक्रिया नैसर्गिक नियम है। शंकर साल-भर तक तपस्या करने पर जब ऋण से मुक्त होने में सफल न हो सका तो उसका संयम निराशा के रूप में परिणत हो गया उसने समझ लिया कि जब इतना कष्ट सहने पर भी साल-भर में साठ रूपए से अधिक जमा न कर सका तो अब और कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा उससे दूने रूपय जमा हों। जब सिर पर ऋण का बोझ लादना है तो क्या मन और क्या सवा मन का। उसका उत्साह क्षीण हो गया, मेहनत से घृणा हो गई। आशा उत्साह की जननी है, आशा में तेज है, बल है, जीवन है। आशा ही संसार की संचालक शक्ति है। शंकर आशाहीन होकर उदासीन हो गया। वह जरूरतें, जिनको उसने साल-भर तक टाल रखा था, अब द्वार पर खड़ी होने वाली भिखारिणी न थीं, बल्कि छाती पर सवार होने वाली पिशाचिनियाँ थीं, जो अपनी भेंट लिए बिना जान नहीं छोड़तीं। कपड़ों में चकतियों के लगने की भी एक सीमा होती है। अब शंकर को चिट्ठा मिलता तो वह रूपए जमा न करता। कभी कपड़े लाता, कभी खाने की कोई वस्तु। जहाँ पहले तमाखू ही पिया करता था, वहाँ अब गाँजे और चरस का चस्का भी लगा। उसे अब रूपए अदा करने की कोई चिंता न थी मानो उसके ऊपर किसी का एक पैसा नहीं आता। पहले जूड़ी चढ़ी होती थी, पर वह काम करने अवश्य जाता था। अब काम पर न जाने के लिए बहाना खोजा करता। इस भाँति तीन वर्ष निकल गए। विप्रजी महाराज ने एक बार भी तकाजा न किया। वह चतुर शिकारी की भाँति अचूक निशाना लगाना चाहते थे। पहले से शिकार चौकाना उनकी नीति के विरुद्ध था।

एक दिन पंडित जी ने शंकर को बुलाकर हिसाब दिखाया। साठ रूपए जो जमा थे वह मिनहा करने पर भी शंकर के जिम्मे एक सौ बीस रूपए निकले।

शंकर—इतने रूपए तो उसी जन्म में दूँगा, इस जन्म में नहीं हो सकते।

विप्र—मैं इसी जन्म में लूँगा। मूल न सही, सूद तो देना ही पड़ेगा।

शंकर—एक बैल है, वह ले लीजिए; एक झोपड़ी है, वह ले लीजिए और मेरे पास क्या रखा है?

विप्र—मुझे बैल-बछिया लेकर क्या करना है। मुझे देने को तुम्हारे पास बहुत कुछ है।

शंकर—और क्या महाराज?

विप्र—कुछ नहीं है, तुम तो हो। आखिर तुम भी कहीं मजूरी करने जाते ही हो, मुझे खेती

के लिए मजूर रखना ही पड़ता है। सूद में हमारे यहाँ काम किया करो, जब सुभीता हो मूल दे देना। सच तो यों है कि अब तुम किसी दूसरी जगह काम करने नहीं जा सकते, जब तक मेरे रूपए नहीं चुका दो। तुम्हारे पास कोई जायदाद नहीं है, इतनी बड़ी गठरी मैं किस एतवार पर छोड़ दूँ। कौन इसका जिम्मा लेगा कि तुम मुझे महीने-महीने सूद देते जाओगे? और कहीं कमाकर जब तुम मुझे सूद भी नहीं दे सकते, तो मूल की कौन कहे?

शंकर—महाराज, सूद में तो काम करूँगा और खाऊँगा क्या?

विप्र—तुम्हारी घरवाली है, लड़के हैं, क्या वे हाथ-पाँव कटा बैठेंगे? रहा मैं, तुम्हें आधा सेर जो रोज कलेवा के लिए दे दिया करूँगा। ओढ़ने को साल में एक कंबल पा जाओगे, एक मिरजई भी बनवा दिया करूँगा और क्या चाहिए? यह सच है कि और लोग तुम्हें छः आने रोज देते हैं लेकिन मुझे ऐसी गरज नहीं है, मैं तो तुम्हें अपने रूपए भरने के लिए रखता हूँ।

शंकर ने कुछ देर तक गहरी चिंता में पड़े रहने के बाद कहा—महाराज, यह तो जन्म-भर की गुलामी हुई।

विप्र— गुलामी समझो, चाहे मजदूरी समझो। मैं अपने रूपए भराए बिना तुमको कभी न छोड़ूँगा। तुम भागोगे तो तुम्हारा लड़का भरेगा। हाँ, जब कोई न रहेगा, तब की दूसरी बात है।

इस निर्णय की कहीं अपील न थी। मजूर की जमानत कौन करता? कहीं शरण न थी, भागकर कहाँ जाता? दूसरे दिन उसने विप्र जी के यहाँ काम करना शुरू कर लिया। सवा सेर गेहूँ की बदौलत उम्र-भर के लिए गुलामी की बेड़ी पैरों में डालनी पड़ी। उस अभागे को अब अगर किसी विचार से संतोष होता था तो यह था कि यह मेरे पूर्व जन्म का संस्कार है। स्त्री को वे काम करने पड़ते थे, जो उसने कभी न किए थे, बच्चे दानों को तरसते थे, लेकिन शंकर चुपचाप देखने के सिवा और कुछ न कर सकता था। गेहूँ के दाने किसी देवता के शाप की भाँति आजीवन उसके सिर से न उतरे।

शंकर ने विप्र जी के यहाँ बीस वर्ष तक गुलामी करने के बाद इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया। एक सौ बीस रूपए अभी तक उसके सिर पर सवार थे। पंडित जी ने उस गरीब को ईश्वर के दरबार में कष्ट देना उचित न समझा, इतने अन्यायी नहीं, इतने निर्दयी वे न थे। उसके जवान बेटे की गरदन पकड़ी। आज तक वह विप्र जी के यहाँ करम करता है। उसका उद्धार कब होगा, होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जानें।

पाठक, इस वृत्तांत को कपोलकल्पित न समझिए। यह सत्य घटना है। ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया खाली नहीं है।

## गुल्ली-डंडा

हमारे अँगरेजीदाँ दोस्त मानें या न मानें, मैं तो कहूँगा कि गुल्ली-डंडा सब खेलों का राजा है। अब भी लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखता हूँ तो जी लोट-पोट हो जाता है कि इनके साथ जाकर खेलने लगूँ। न लॉन की जरूरत, न कोर्ट की, न नेट की, न थापी की। मजे से किसी पेड़ से एक टहनी काट ली, गुल्ली बना ली और दो आदमी आ गए तो खेल शुरू हो गया। विलायती खेलों में सबसे बड़ा ऐब यह है कि उनके सामान महँगे होते हैं। जब तक कम-से-कम एक सैकड़ा न खर्च कीजिए, खिलाड़ियों में शुमार ही नहीं हो सकते। यहाँ गुल्ली-डंडा है कि बिना हर्-फिटकिरी के चोखा रंग देता है। पर हम अँगरेजी चीजों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजों से अरुचि हो गई है। हमारे स्कूल में हर एक लड़के से तीन-चार रूपए सालाना केवल खेलने की फीस ली जाती है। अँगरेजी खेल उसी के लिए है, जिसके पास धन है। गरीब लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मढ़ते हैं! ठीक है, गुल्ली से आँख फूट जाने का भय रहता है, तो क्या क्रिकेट से सिर फूट जाने, तिल्ली फट जाने, टाँग टूट जाने का भय नहीं रहता! अगर हमारे माथे में गुल्ली का दाग आज तक बना हुआ है तो हमारे कई दोस्त ऐसे हैं, जो थापी को बैसाखी से बदल बैठे। खैर, यह अपनी-अपनी रूचि है। मुझे गुल्ली सब खेलों से अच्छी लगती है और बचपन की मीठी स्मृतियों में गुल्ली ही सबसे मीठी है। वह प्रातःकाल घर से निकल जाना, वह पेड़ पर चढ़कर टहनियाँ काटना और गुल्ली-डंडा बनाना, वह उत्साह, वह लगन, वह खिलाड़ियों के जमघट, वह पदना और पदाना, वह लड़ाई-झगड़े, जिसमें छूत-अछूत, अमीर-गरीब का बिलकुल भेद न रहता था, जिसमें अमीराना चोचलों की, प्रदर्शन की अभिलाषा की गुंजाइश ही न थी, उस वक्त भूलेगा जब ...

घरवाले बिगड़ रहे हैं, पिता जी चौके पर बैठे वेग से रोटियों पर अपना क्रोध उतार रहे हैं, अम्मा की दौड़ केवल द्वार तक है, लेकिन उनकी विचारधारा में मेरा अंधकारामय भविष्य टूटी हुई नौका की तरह डगमगा रहा है; और मैं हूँ कि पदाने में मस्त हूँ। न नहाने की सुध है, न खाने की। गुल्ली है तो जरा-सी, पर उसमें दुनिया-भर की मिठाइयों की मिठास और तमाशों का आनंद भरा हुआ है।

मेरे हमजोलियों में एक लड़का गया नाम का था। मुझसे दो-तीन साल बड़ा होगा। दुबला-पतला बंदरों की-सी लंबी-लंबी, पतली-पतली उँगलियाँ, बंदरों ही की-सी चपलता, झल्लाहट। गुल्ली कैसी ही हो, उस पर इस तरह लपकता था, जैसे छिपकली कीड़ों पर लपकती है। मालूम नहीं उसके माँ-बाप थे या नहीं, कहाँ रहता था, क्या खाता था, पर था हमारे गुल्ली क्लब का चैंपियन। जिसकी तरफ वह आ जाए, उसकी जीत निश्चित ही थी। हम सब उसे दूर से आते देख उसका दौड़कर स्वागत करते थे और उसे अपना गोइयाँ बना



लेते थे।

एक दिन हम और गया दोनों ही खेल रहे थे। वह पदा रहा था, मैं पद रहा था; मगर कुछ विचित्र बात है कि पदाने में हम दिन-भर मस्त रह सकते हैं, पदना एक मिनट का अखरता है। मैंने गला छुड़ाने के लिए सब चालें चलीं, जो ऐसे अवसर पर शास्त्रविहीन न होने पर भी क्षम्य हैं, लेकिन गया अपना दाँव लिए वगैर मेरा पिंड न छोड़ता था।

मैं घर की ओर भागा। अनुनय-विनय का कोई असर न हुआ।

गया ने मुझे दौड़कर पकड़ लिया और डंडा तानकर बोला—मेरा दाँव देकर जाओ। पदाया तो बड़े बहादुर बनके, पदने के बेर क्यों भागे जाते हो?

‘तुम दिन-भर पदाओ तो मैं दिन-भर पदता रहूँ?’

‘हाँ, तुम्हें दिन-भर पदना पड़ेगा।’

‘न खाने जाऊँ, न पीने जाऊँ!’

‘हाँ, मेरा दाँव दिए बिना कहीं नहीं जा सकते।’

‘मैं तुम्हारा गुलाम हूँ?’

‘हाँ, मेरे गुलाम हो।’

‘मैं घर जाता हूँ, देखूँ मेरा क्या कर लेते हो?’

‘घर कैसे जाओगे, कोई दिल्लगी है। दाँव दिया है, दाँव लेंगे।’

‘अच्छा कल मैंने अमरूद खिलाया था। वह लौटा दो।’

‘वह तो पेट में चला गया।’

‘निकालो पेट से, तुमने क्यों खाया मेरा अमरूद?’

‘अमरूद तुमने दिया, तब मैंने खाया। मैं तुमसे माँगने न गया था।’

‘जब तक मेरा अमरूद न दोगे, मैं दाँव न दूँगा।’

मैं समझता था, न्याय मेरी ओर है। आखिर मैंने किसी स्वार्थ से ही उसे अमरूद खिलाया होगा। कौन निःस्वार्थ किसी के साथ सलूक करता है। भिक्षा तक तो स्वार्थ के लिए ही देते हैं। जब गया ने अमरूद खाया तो फिर उसे मुझसे दाँव लेने का क्या अधिकार है? रिश्वत देकर तो लोग खून पचा जाते हैं। यह मेरा अमरूद यों ही हजम कर जाएगा! अमरूद पैसे के पाँच वाले थे, जो गया के बाप को नसीब न होंगे। यह सरासर अन्याय था।

गया ने मुझे अपनी ओर खींचते हुए कहा—मेरा दाँव देकर जाओ, अमरूद-समरूद मैं नहीं जानता।

मुझे न्याय का बल था। वह अन्याय पर डटा हुआ था। मैं हाथ छुड़ाकर भागना चाहता था, वह मुझे जाने न देता था। मैंने गाली दी, उसने कड़ी गाली दी और गाली ही नहीं, दो-एक चाँटा भी जमा दिया। मैंने उसे दाँत से काट लिया। उसने मेरी पीठ पर डंडा जमा दिया। मैं रोने लगा। गया मेरे इस शस्त्र का मुकाबला न कर सका। भागा। मैंने तुरंत आँसू पोंछ डाले, डंडे की चोट भूल गया और हँसता हुआ घर जा पहुँचा। मैं थानेदार का लड़का, एक नीच जात के लौंडे के हाथों पिट गया, यह मुझे उस समय भी अपमानजनक मालूम हुआ, लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।

उन्हीं दिनों पिता जी का तबादला वहाँ से हो गया। नई दुनिया देखने की खुशी में ऐसा फूला कि अपने हमजोलियों से बिछुड़ जाने का बिलकुल दुख न हुआ। पिताजी दुखी थे। यह बड़ी आमदनी की जगह थी। अम्मा जी भी दुखी थीं, यहाँ सब चीजें सस्ती थीं और मुहल्ले की स्त्रियों से घराव-सा हो गया था; लेकिन मैं मारे खुशी के फुला न समाता था। लड़कों से जीट उड़ा रहा था कि वहाँ घर ऐसे थोड़े ही होते हैं; ऐसे-ऐसे ऊँचे घर हैं कि आसमान से बात करते हैं। वहाँ के अँगरेजी स्कूल में कोई मास्टर लड़कों को पीटे तो उसे जेल हो जाए। मेरे मित्रों की फैली हुई आँखें और चकित मुद्रा बतला रही थी कि मैं उनकी निगाह में कितना ऊँचा उठ गया हूँ। बच्चों में मिथ्या को सत्य बना लेने की वह शक्ति है, जिसे हम, जो सत्य को मिथ्या बना लेते हैं, क्या समझेंगे। उन बेचारों को मुझसे कितनी स्पर्धा हो रही थी। मानो कह रहे थे, तुम भग्यवान हो भाई, जाओ, हमें तो इसी उजाड़ ग्राम में जीना भी है और मरना भी।

बीस साल गुजर गए। मैंने इंजीनियरी पास की और उसी जिले का दौरा करता हुआ उसी कस्बे में पहुँचा और डाक बँगले में ठहरा। उस स्थान को देखते ही इतनी मधुर बाल-स्मृतियाँ हृदय में जाग उठीं कि मैंने छड़ी उठाई और कस्बे की सैर करने निकला। आँखें किसी प्यासे पथिक की भाँति बचपन के उन क्रीड़ास्थलों को देखने के लिए व्याकुल हो रही थीं; पर उसी परिचित नाम के सिवा वहाँ और कुछ परिवर्तन न था। जहाँ खंडहर था, वहाँ पक्के मकान खड़े थे, जहाँ बरगद का पेड़ था, वहाँ अब सुंदर बगीचा था। स्थान का कायापलट हो गया था। अगर उसके नाम और स्थिति का ज्ञान न होता तो मैं इसे पहचान भी न सकता। बचपन की संचित और अमर स्मृतियाँ बाँहें खोले अपने उन पुराने मित्रों से गले मिलने को अधीर हो रही थीं; मगर वह दुनिया बदल गई। ऐसा जी होता था कि उस धरती से लिपटकर रोऊँ और कहूँ, तुम मुझे भूल गई? मैं तो अब भी तुम्हारा वही रूप देखना चाहता हूँ।

सहसा एक खुली हुई जगह मैंने दो-तीन लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखा। एक क्षण के लिए मैं अपने को बिलकुल भूल गया। भूल गया कि मैं एक अफसर हूँ, साहबी ठाठ में, रौब और अधिकार के आवरण में।

जाकर एक लड़के से पूछा—क्यों बेटे, यहाँ कोई गया नाम का आदमी रहता है?

एक लड़के ने गुल्ली-डंडा समेटकर सहमे हुए स्वर में कहा—कौन गया? गया चमार?

मैंने यों ही कहा—हाँ-हाँ वही। गया नाम का कोई आदमी है तो? शायद वही हो।

‘हाँ, है तो।’

‘जरा उसे बुला सकते हो?’

लड़का दौड़ा हुआ गया और क्षण में एक पाँच हाथ के काले देव को साथ लिए आता दिखाई दिया। मैं दूर से ही पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले लिपट जाऊँ, पर कुछ सोचकर रह गया। बोला—कहो गया, मुझे पहचानते हो?

गया ने झुककर सलाम किया—हाँ मालिक, भला पहचानूँगा क्यों नहीं? आप मज़े में रहे?

बहुत मजे में। तुम अपनी कहो।’

‘डिप्टी साहब का साईस हूँ।’

‘मतई, मोहन, दुर्गा यह सब कहाँ हैं? कुछ खबर है?’

‘मतई तो मर गया। दुर्गा और मोहन दोनों डाकिये हो गए हैं। आप?’

‘मैं तो जिले का इंजीनियर हूँ।’

‘सरकार तो पहले ही बड़े जहीन थे।’

‘अब कभी गुल्ली-डंडा खेलते हो?’

गया ने मेरी ओर प्रश्न-भरी आँखों से देखा—अब गुल्ली-डंडा क्या खेलूँगा सरकार, अब तो धंधे से छुट्टी नहीं मिलती।

‘आओ आज हम-तुम खेलें। तुम पदाना, हम पढ़ेंगे। तुम्हारा एक दाँव हमारे ऊपर है। वह आज ले लो।’

गया बड़ी मुश्किल से राजी हुआ। वह ठहरा टके का मजदूर, मैं एक बड़ा अफसर। हमारा और उसका क्या जोड़! बेचारा झेंप रहा था, लेकिन मुझे कुछ भी झेंप न थी; इसलिए नहीं कि मैं गया के साथ खेलने जा रहा था, बल्कि इसलिए कि लोग इस खेल को अजूबा समझकर इसका तमाशा बना लेंगे और अच्छी-खासी भीड़ लग जाएगी। उस भीड़ में वह आनंद कहाँ रहेगा; पर खेले बगैर तो रहा नहीं जाता था। आखिर निश्चय हुआ कि दोनों जने बस्ती से बहुत दूर एकांत में जाकर खेलें। वहाँ कौन कोई देखने वाला बैठा होगा। मजे से खेलेंगे और बचपन की उस मिठाई को खूब रस ले-लेकर खाएँगे। मैं गया को लेकर डाकबंगले आया और मोटर में बैठकर दोनों मैदान की ओर चले। साथ में एक कुल्हाड़ी ले ली। मैं गंभीर भाव धारण किए था। लेकिन गया इसे अभी तक मजाक ही समझ रहा था। फिर भी उसके मुख पर उत्सुकता या आनंद का कोई चिह्न न था। शायद वह हम दोनों में जो अंतर हो गया था, वही सोचने में मग्न था।

मैंने पूछा, ‘तुम्हें कभी हमारी याद आती थी गया? सच कहना।’

गया झेंपता हुआ बोला—मैं आपको क्यों याद करता हुजूर, किस लायक हूँ! भाग में आपके साथ कुछ दिनों तक खेलना बदा था, नहीं मेरी क्या गिनती!

मैंने कुछ उदास होकर कहा—लेकिन मुझे तो बराबर तुम्हारी याद आती थी। तुम्हारा वह डंडा, जो तुमने तानकर जमाया था, याद है न?

गया ने पछताते हुए कहा—वह लड़कपन था सरकार, उसकी याद न दिलाओ।

‘वाह! वह मेरे बाल-जीवन की सबसे रसीली याद है। तुम्हारे उस डंडे में जो रस था, वह तो अब न आदर-सम्मान में पाता हूँ, न धन में। कुछ ऐसी मिठास थी उसमें कि आज तक उससे मन मीठा होता रहता है।’

इतनी देर में हम बस्ती से कोई तीन-चार मील निकल आए। चारों तरफ सन्नाटा है। पश्चिम की ओर कोसों तक भीमताल फैला हुआ है, जहाँ आकर हम किसी समय कमल पुष्प तोड़ ले जाते थे और उसके झुमके बनाकर कानों में डाल लेते थे। जेठ की संध्या केसर में डूबी चली आ रही है। मैं लपककर एक पेड़ पर चढ़ गया और एक टहनी काट लाया।

चटपट गुल्ली-डंडा बन गया।

खेल शुरू हो गया। मैंने गुच्ची में गुल्ली रखकर उछाली। गुल्ली गया के समाने से निकल गई। उसने हाथ लपकाया जैसे मछली पकड़ रहा हो। गुल्ली उसके पीछे जाकर गिरी। यह वही गया है, जिसके हाथों में गुल्ली जैसे अपने आप ही जाकर बैठ जाती थी, वह दाहिने-बाएँ कहीं हो। गुल्ली उसकी हथेलियों में ही जा पहुँचती थी, जैसे गुल्लियों पर वशीकरण डाल देता हो। नई गुल्ली, पुरानी गुल्ली, छोटी गुल्ली, बड़ी गुल्ली, नोकदार गुल्ली, सपाट गुल्ली सभी उससे मिल जाती थीं। जैसे उसके हाथों में कोई चुंबक हो, जो गुल्लियों को खींच लेता हो। लेकिन आज गुल्ली को उससे वह प्रेम न रहा। फिर तो मैंने पदाना शुरू किया। मैं तरह-तरह की धाँधलियाँ कर रहा था। अभ्यास की कसर बेईमानी से पूरी कर रहा था। हुच जाने पर भी डंडा खेले जाता था। हालांकि शास्त्र के अनुसार गया की बारी आनी चाहिए थी। गुल्ली पर ओछी चोट पड़ती और वह जरा दूरी पर गिर पड़ती तो मैं झपटकर उठा लेता और दोबारा टाँड़ लगाता। गया ये सारी बेकायदगियाँ देख रहा था पर कुछ न बोलता था, जैसे उसे वह सब कायदे-कानून भूल गए। उसका निशाना कितना अचूक था; गुल्ली उसके हाथ से निकलकर टन से डंडे में जाकर लगती थी। उसके हाथ से छूटकर उसका काम था डंडे से टकरा जाना; लेकिन आज वह गुल्ली डंडे में लगती ही नहीं कभी दाहिने जाती है, कभी बाएँ, कभी आगे, कभी पीछे।

आध घंटे पदाने के बाद एक बार गुल्ली डंडे में आ लगी। मैंने धाँधली की, गुल्ली डंडे में नहीं लगी, बिलकुल पास से गई; लेकिन लगी नहीं।

गया ने किसी प्रकार का असंतोष नहीं प्रकट किया।

‘न लगी होगी।’

‘डंडे में लगती तो क्या बेईमानी करता?’

‘नहीं भैया, तुम भला बेईमानी करोगे?’

बचपन में, मजाल था कि मैं ऐसा घपला करके जीता बचता। यही गया गरदन पर चढ़ बैठता; लेकिन आज उसे कितनी आसानी से धोखा दिए चला जाता था। गधा है! सारी बातें भूल गया।

सहसा गुल्ली डंडे में लगी और इतने जोर से लगी जैसे बंदूक छूटी हो। इस प्रमाण के सामने अब किसी तरह की धाँधली करने का साहस मुझे इस वक्त भी न हो सका; लेकिन क्यों न एक बार सच को झूठ बताने की चेष्टा करूँ? हरज ही क्या है। मान गया तो वाह-वाह, नहीं तो चार हाथ पदना ही तो पड़ेगा। अंधेरे का बहाना करके जल्दी से गला छुड़ा लूँगा। फिर कौन दाँव देने आता है।

गया ने विजय के उल्लास में कहा—लग गई, लग गई। टन से बोली।

मैंने अनजान बनने की चेष्टा करके कहा—तुमने लगते देखा! मैंने तो नहीं देखा।

‘टन से बोली है सरकार!’

‘और जो किसी ईंट से लग गई हो?’

मेरे मुख से यह वाक्य उस समय कैसे निकला इसका मुझे खुद आश्चर्य है। इस सत्य

को झुठलाना वैसा ही था जैसे दिन को रात बताना। हम दोनों ने गुल्ली को डंडे में जोर से लगते देखा था; लेकिन गया ने मेरा कथन स्वीकार कर लिया।

‘हाँ, किसी ईंट में लग गई होगी। डंडे में लगती तो इतनी आवाज न आती।’

मैंने फिर पदाना शुरू कर दिया। लेकिन इतनी प्रत्यक्ष धाँधली कर लेने के बाद गया की सरलता पर मुझे दया आने लगी, इसलिए अब तीसरी बार गुल्ली-डंडे में लगी, तो मैंने बड़ी उदारता से दाँव देना तय किया।

गया ने कहा—अब तो अँधेरा हो गया है भैया; कल पर रखो।

मैंने सोचा-कल बहुत-सा समय होगा, यह न जाने कितनी देर पदावे, इसलिए इसी वक्त मुआमला साफ कर देना अच्छा होगा।

‘नहीं, नहीं। अभी बहुत उजाला है। तुम अपना दाँव ले लो।’

‘गुल्लू सूझेगी नहीं।’

‘कुछ परवाह नहीं।’

गया ने पदाना शुरू किया। पर उसे बिलकुल अभ्यास न था। उसने दो बार टाँड़ लगाने का इरादा किया, लेकिन दोनों ही बार हुच गया। एक मिनट से कम में वह दाँव पूरा कर चुका। बेचारा घंटा-भर पदा, पर एक ही मिनट में अपना दाँव खो बैठा। मैंने हृदय की विशालता का परिचय दिया।

‘एक दाँव और खेल लो। तुम तो पहले ही हाथ में हुच गए।’

‘नहीं भैया, अब अँधेरा हो गया।’

‘तुम्हारा अभ्यास छूट गया। कभी खेलते नहीं।’

‘खेलने का समय कहाँ मिलता है भैया!’

हम दोनों मोटर पर जा बैठे और चिराग जलते-जलते पड़ाव पर पहुँच गए। गया चलते-चलते बोला—कल यहीं गुल्ली डंडा होगा। सभी पुराने खिलाड़ी खेलेंगे। तुम भी आओगे? जब तुम्हें फुरसत हो, तभी खिलाड़ियों को बुलाऊँ।

मैंने शाम का समय दिया और दूसरे दिन मैच देखने गया। कोई दस-दस आदमियों की मंडली थी। कई मेरे लड़कपन के साथी निकले। अधिकांश युवक थे, जिनमें मैं पहचान नहीं सका। खेल शुरू हुआ। मैं मोटर पर बैठा-बैठा तमाशा देखने लगा। आज गया का खेल, उसका वह नैपुण्य देखकर मैं चकित रह गया। टाँड़ लगाता तो गुल्ली आसमान से बातें करती। कल की-सी वह झिझक, वह हिचकिचाहट, वह बेदिली आज न थी। लड़कपन में जो बात थी, आज उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी। कहीं कल इसने मुझे इस तरह पदाया होता, तो मैं जरूर रोने लगता। उसके डंडे की चोट खाकर गुल्ली दो सौ गज की खबर लाती थी।

पदने वालों में एक युवक ने कुछ धाँधली की। उसने अपने विचार में गुल्ली रोक ली थी। गया का कहना था, गुल्ली जमीन में लगकर उछली थी। इस पर दोनों में ताल ठोकने की नौबत आई। युवक दब गया। गया का तमतमाया हुआ चेहरा देखकर डर गया। अगर वह दब न जाता तो जरूर मार-पीट हो जाती। मैं खेल में न था; पर दूसरों की इस खेल में मुझे वही लड़कपन का आनंद आ रहा था, जब हम सब कुछ भूलकर मस्त हो जाते थे। अब मुझे

मालूम हुआ कि कल गया ने मेरे साथ खेला नहीं, केवल खेलने का बहाना किया। उसने मुझे दया का पात्र समझा। मैंने धाँधली की, बेईमानी की, पर उसे जरा भी क्रोध न आया, इसलिए वह खेल न रहा था, मुझे खिला रहा था, मेरा मन रख रहा था। वह मुझे पदा कर मेरा कचूमर नहीं निकालना चाहता था। मैं अब अफसर हूँ। यह अफसरी मेरे और उनके बीच में दीवार बन गई है। अब उसका लिहाज पा सकता हूँ, अदब पा सकता हूँ, साहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था, तब मैं उसका समकक्ष था। हममें कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूँ। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ।

## लॉटरी

जल्दी से मालदार हो जाने की हबस किसे नहीं होती? उन दिनों जब लाटरी के टिकट आए तो मेरे दोस्त विक्रम के पिता, चाचा, अम्मा और भाई, सभी ने एक-एक टिकट खरीद लिया। कौन जाने किसकी तकदीर जोर करे? किसी के नाम आए रूपया, रहेगा तो घर में ही।

मगर विक्रम को सब्र न हुआ। औरों के नाम रूपए आएँगे, तो बहुत होगा, दस-पाँच हजार उसे मिल जाएँगे। इतने रूपयों में उसका क्या होगा? उसकी जिंदगी में बड़े-बड़े मंसूबे थे। पहले तो उसे संपूर्ण जगत की यात्रा करनी थी, एक-एक कोने की। पीरू और ब्राजील और टिंबकटू और होनोलूलू—ये सब उसके प्रोग्राम में थे। वह आँधी की तरह महीने-दो-महीने उड़कर लौट आनेवालों में न था। वह एक-एक स्थान में कई-कई दिन ठहरकर वहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का अध्ययन करना और संसार-यात्रा पर एक वृहद् ग्रंथ लिखना चाहता था। फिर उसे एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाना था, जिसमें दुनिया-भर की उत्तम रचनाएँ जमा की जाएँ। पुस्तकालय के लिए वह दो लाख तक खर्च करने को तैयार था। बँगला, कार और फर्नीचर तो मामूली बातें थीं। पिता या चाचा के नाम रूपए आए, तो पाँच हजार से ज्यादा का डौल नहीं, अम्मा के नाम आए, तो बीस हजार मिल जाएँगे; लेकिन भाई साहब के नाम आ गए, तो उसके हाथ धेला भी न लगेगा। वह आत्माभिमानि था। घरवालों से भी खैरात या पुरस्कार के रूप में कुछ लेने की बात उसे अपमान-सी लगती थी। कहा करता था—भाई, किसी के सामने हाथ फैलाने से तो किसी गड्ढे में डूब मरना अच्छा है। जब आदमी अपने लिए संसार में कोई स्थान न निकाल सके, तो यहाँ से प्रस्थान कर जाए।

वह खुद बेकार था। घर में लाटरी-टिकट के लिए उसे कौन रूपया देगा? और वह माँगे भी तो कैसे? उसने बहुत सोच-विचारकर कहा—क्यों न हम-तुम साझे में एक टिकट ले लें?

तजवीज मुझे भी पसंद आई। मैं उन दिनों स्कूल-मास्टर था। बीस रूपए मिलते थे। उसमें बड़ी मुश्किल से गुजर होती थी। दस रूपए का टिकट खरीदना मेरे लिए सफेद हाथी खरीदना था। हाँ, एक महीना दूध, घी, जलपान और ऊपर के सारे खर्च तोड़कर पाँच रूपए की गुंजाइश निकल सकती थी। फिर भी डरता था, कहीं से कोई बालेय रकम मिल जाए, तो कुछ हिम्मत बड़े।

विक्रम ने कहा—कहो तो अपनी अँगूठी बेच डालूँ? कह दूँगा, उँगली से फिसल पड़ी।

अँगूठी दस रूपए से कम न थी। उसमें पूरा टिकट आ सकता था। अगर कुछ खर्च किए बिना ही टिकट में आधा-साझा हुआ जाता है, तो क्या बुरा है?

सहसा विक्रम फिर बोला—लेकिन भई, तुम्हें नकद देने पड़ेंगे। मैं पाँच रूपए नकद लिए

बगैर साझा न करूँगा।

अब मुझे औचित्य का ध्यान आ गया। बोला-नहीं दोस्त, यह बुरी बात है, चोरी खुल जाएगी, तो शर्मिंदा होना पड़ेगा और तुम्हारे साथ मुझ पर भी डाँट पड़ेगी।

आखिर यह तय हुआ कि पुरानी किताबें किसी सेकेंड हैंड किताबों की दुकान पर बेच डाली जाएँ और उस रूपए से टिकट लिया जाए। किताबों से ज्यादा बे जरूरत हमारे पास कोई चीज न थी। हम दोनों ही मैट्रिक पास हुए थे और यह देखकर कि जिन्होंने डिग्रियाँ लीं और आँखें फोड़ीं, और घर के रूपए बरबाद किए, वह भी जूतियाँ चटका रहे हैं, हमने वहीं हाल्ट कर दिया। मैं स्कूट मास्टर हो गया और विक्रम मटरगश्ती करने लगा। हमारी पुरानी पुस्तकें अब दीमकों के सिवा हमारे किसी काम की न थीं। हमसे जितना चाटते बना चाटा, उनका सत्त निकाल लिया, अब चूहे चाटें या दीमक, हमें परवाह न थी। आज हम दोनों ने उन्हें कूड़ेखाने से निकाला और झाड़-पोंछकर एक बड़ा-सा गट्टर बाँधा। मास्टर था, किसी बुकसेलर की दुकान पर किताब बेचते हुए झेंपता था। मुझे सभी पहचानते थे, इसलिए यह खिदमत विक्रम के सुपुर्द हुई और वह आध घंटे में दस रूपए का एक नोट लिए उछलता-कूदता आ पहुँचा। मैंने उसे इतना प्रसन्न कभी न देखा था। किताबें चालीस रूपए से कम की न थीं, पर यह दस रूपए उस वक्त में हमें जैसे पड़े हुए मिले। अब टिकट में आधा साझा होगा। दस लाख की रकम मिलेगी। पाँच लाख मेरे हिस्से में आएँगे, पाँच विक्रम के हिस्से में। हम अपने इसी विचार में मगन थे।

मैंने संतोष का भाव दिखाकर कहा—पाँच लाख भी कुछ कम नहीं होते जी।

विक्रम इतना संतोषी न था। बोला—पाँच लाख क्या, हमारे लिए तो इस वक्त पाँच सौ भी बहुत हैं भाई, मगर जिंदगी का प्रोग्राम तो बदलना पड़ गया। मेरी यात्रा वाली स्कीम तो टल नहीं सकती। हाँ, पुस्तकालय गायब हो गया।

मैंने आपत्ति की—आखिर यात्रा में तुम दो लाख से ज्यादा तो न खर्च करोगे?

‘जी नहीं, उसका बजट है साढ़े तीन लाख का। सात वर्ष का प्रोग्राम है। पचास हजार रूपए साल ही तो हुए?’

‘चार हजार महीना कहो। मैं समझता हूँ, दो हजार में तुम बड़े आराम से रह सकते हो।’

विक्रम ने गर्म होकर कहा—मैं शान से रहना चाहता हूँ, भिखारियों की तरह नहीं।

‘दो हजार में तुम शान से रह सकते हो।’

जब तक आप अपने हिस्से में से दो लाख मुझे न दे देंगे, पुस्तकालय न बन सकेगा।

‘कोई जरूरी नहीं कि तुम्हारा पुस्तकालय शहर में बेजोड़ हो?’

‘मैं तो बेजोड़ बनवाऊँगा।’

‘इसका तुम्हें अख्तियार है; लेकिन मेरे रूपए में से तुम्हें कुछ न मिल सकेगा। मेरी जरूरतें देखो। तुम्हारे घर में काफी जायदाद है। तुम्हारे सिर कोई बोझ नहीं, मेरे सिर तो सारी गृहस्थी का बोझ है। दो बहनों का विवाह है, दो भाइयों की शिक्षा है, नया मकान बनवाना है। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि सब रूपए सीधे बैंक में जमा कर दूँगा। उनके सूद से काम चलाऊँगा। कुछ ऐसी शर्तें लगा दूँगा कि मेरे बाद भी कोई इस रकम में हाथ न



लगा सके।’

विक्रम ने सहानुभूति के भाव से कहा—हाँ, ऐसी दशा में तुमसे कुछ माँगना अन्याय है। खैर, मैं ही तकलीफ उठा लूँगा, लेकिन बैंक में सूद का दर तो बहुत गिर गया है।

हमने कई बैंकों के सूद का दर देखा, स्थायी कोष का भी, सेविंग बैंक का भी। बेशक दर बहुत कम था। दो-ढाई रूपए सैकड़ा ब्याज पर जमा करना व्यर्थ है। क्यों न लेन-देन का कारोबार शुरू किया जाए। विक्रम भी यात्रा पर न जाएगा। दोनों के साझे में कोठी चलेगी, जब कुछ धन जमा हो जाएगा तब वह यात्रा करेगा। लेन-देन में सूद भी अच्छा मिलेगा और अपना रौब-दाब भी रहेगा। हाँ, जब तक अच्छी जमानत न हो किसी को रूपया न देना चाहिए, चाहे आसामी कितनी ही मातबर क्यों न हो। और जमानत पर रूपया दें ही क्यों? जायदाद रेहन लिखकर रूपए देंगे। फिर तो कोई खटका न रहेगा।

वह मंजिल भी तय हुई। अब यह प्रश्न उठा कि टिकट पर किसका नाम रहे। विक्रम ने अपना नाम रखने के लिए बड़ा आग्रह किया। अगर उसका नाम न रहा, तो वह टिकट ही न लेगा। मैंने कोई उपाय न देखकर मंजूर कर लिया, और बिना किसी लिखा-पढ़ी के, जिससे आगे चलकर मुझे बड़ी परेशानी हुई।

एक-एक करके इंतजार के दिन कटने लगे। भोर होते ही हमारी आँखें कैलेंडर पर जातीं। मेरा मकान विक्रम के मकान से मिला हुआ था। स्कूल जाने के पहले और स्कूल से आने के बाद हम दोनों साथ बैठकर अपने-अपने मंसूबे बाँधा करते और इस तरह सायँ-सायँ कि कोई सुन न ले। हम अपने टिकट खरीदने का रहस्य छिपाए रखना चाहते थे। यह रहस्य जब सत्य का रूप धारण कर लेगा, उस वक्त लोगों को कितना विस्मय होगा! उस दृश्य का नाटकीय आनंद हम नहीं छोड़ना चाहते थे।

एक दिन बातों-बातों में विवाह का जिक्र आ गया। विक्रम ने दार्शनिक गंभीरता से कहा—भाई, शादी-वादी का जंजाल तो मैं नहीं पालना चाहता। व्यर्थ की चिंता और हाय-हाय। पत्नी की नाज-नखरेदारी में ही बहुत-से रूपए उड़ जाएँगे।

मैंने इसका विरोध किया—हाँ, यह तो ठीक है, लेकिन जब तक जीवन के सुख-दुख का कोई साथी न हो, जीवन का आनंद ही क्या? मैं तो विवाहित जीवन से इतना विरक्त नहीं हूँ। हाँ, साथी ऐसा चाहता हूँ जो अंत तक साथ रहे और ऐसा साथी पत्नी के सिवा दूसरा नहीं हो सकता।

विक्रम जरूरत से ज्यादा तुनुकमिजाजी से बोला—खैर, अपना-अपना दृष्टिकोण है। आपको बीवी मुबारक और कुत्तों की तरह उसके पीछे-पीछे चलना और बच्चों को संसार की सबसे बड़ी विभूति और ईश्वर की सबसे बड़ी दया समझना मुबारक। बंदा तो आजाद रहेगा, अपने मजे से जहाँ चाहा गए और जब चाहा उड़ गए और जब चाहा घर आ गए। यह नहीं कि हर वक्त एक चौकीदार आपके सिर पर सवार हो। जरा-सी देर हुई घर आने में और फौरन जवाब तलब हुआ, कहाँ थे अब तलक? आप कहीं बाहर निकले और फौरन सवाल हुआ, कहाँ जाते हो? और कहीं दुर्भाग्य से पत्नी जी भी साथ हो गई तब तो डूब मरने के सिवा आपके लिए कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। भैया, मुझे आपसे जरा भी सहानुभूति नहीं।

बच्चे को जरा-सा जुकाम हुआ और आप बेतहाशा दौड़े जा रहे हैं होमियोपैथिक डाक्टर के पास। जरा उम्र खिसकी और लौंडे मनाने लगे कि अब आप प्रस्थान करें और वह गुलछरें उड़ाएँ। मौका मिला तो आपको जहर खिला दिया और मशहूर किया कि आपको कालरा हो गया था। मैं इस जंजाल में नहीं पड़ता।

कुंती आ गई। वह विक्रम की छोटी बहन थी, कोई ग्यारह साल की। छठे में पढ़ती थी और बराबर फेल होती थी। बड़ी चिबिल्ली, बड़ी शोख। इतने धमाके से द्वार खोला कि हम दोनों चौंककर उठ खड़े हुए।

विक्रम बिगड़कर कहा—तू बड़ी शैतान है कुंती, किसने तुझे बुलाया यहाँ?

कुंती ने खुफिया पुलिस की तरह कमरे में नजर दौड़ाकर कहा—तुम लोग हरदम यहाँ किवाड़ बंद किए क्या बातें किया करते हो? जब देखो, यहीं बैठे रहते हो। न कहीं घूमने जाते हो, न तमाशा देखने; कोई जादू-मंत्र जगाते होंगे।

विक्रम ने उसकी गर्दन पकड़कर हिलाते हुए कहा—हाँ, एक मंत्र जगा रहे हैं, जिसमें तुझे ऐसा दूल्हा मिले, जो रोज गिनकर पाँच हजार हंटर जमाए सड़ासड़।

कुंती उसकी पीठ पर बैठकर बोली—मैं ऐसे दूल्हे से ब्याह करूँगी, जो मेरे सामने खड़ा पूँछ हिलाता रहेगा। मैं मिठाई के दोने फेंक दूँगी और वह चाटेगा। जरा भी चीं-चपड़ करेगा तो कान गर्म कर दूँगी। अम्मा को लाटरी के रूपए मिलेगे, तो पचास हजार मुझे दे देंगी। बस, चैन करूँगी। मैं दोनों वक्त ठाकुरजी से अम्मा के लिए प्रार्थना करती हूँ। अम्मा कहती हैं, कुंवारी लड़कियों की दुआ कभी निष्फल नहीं होती। मेरा मन तो कहता है, अम्मा को जरूर रूपए मिलेंगे।

मुझे याद आया, एक बार मैं अपने ननिहाल देहात में गया था, तो सूखा पड़ा हुआ था। भादो का महीना आ गया था, मगर पानी की बूँद नहीं। तब लोगों ने चंदा करके गाँव की सब कुंवारी लड़कियों की दावत की थी और उसके तीसरे ही दिन मूसलाधार वर्षा हुई थी। अवश्य ही कुंवारियों की दुआ में असर होता है।

मैंने विक्रम को अर्थपूर्ण आँखों से देखा, विक्रम ने मुझे। आँखों ही में हमने सलाह कर ली और निश्चय भी कर लिया। विक्रम ने कुंती से कहा—अच्छा, तुझसे एक बात कहें, किसी से कहेगी तो नहीं? नहीं, तू तो बड़ी अच्छी लड़की है, किसी से न कहेगी। मैं अबकी तुझे खूब पढ़ाऊँगा और पास करा दूँगा। बात यह है कि हम दोनों ने भी लाटरी का टिकट लिया है। हम लोगों के लिए भी ईश्वर से प्रार्थना किया कर। अगर हमें रूपए मिले तो तेरे लिए अच्छे-अच्छे गहने बनवा देंगे। सच!

कुंती को विश्वास न आया। हमने कसमें खाईं। वह नखरे करने लगी। जब हमने उसे सिर से पाँव तक सोने-हीरे से मढ़ देने की प्रतिज्ञा की, तब वह हमारे लिए दुआ करने को राजी हुई।

लेकिन उसके पेट में मनो मिठाई पच सकती थी, वह ज़रा-सी बात न पची। सीधे अंदर भागी और एक क्षण में सारे घर में वह खबर फैल गई। अब जिसे देखिए, विक्रम को डाँट रहा है, अम्मा भी, चाचा भी, पिता भी, केवल विक्रम की शुभकामना के या और किसी बात से,

कौन जाने बैठे-बैठे तुम्हें हिमाकृत ही सूझती है। रूपए लेकर पानी में फेंक दिए। घर में इतने आदमियों ने तो टिकट लिया ही था, तुम्हें लेने की क्या जरूरत थी? क्या तुम्हें उसमें से कुछ न मिलते? और तुम भी मास्टर साहब, बिलकुल घोंघा हो। लड़के को अच्छी बातें क्या सिखाओगे, उसे और चौपट किए डालते हो।

विक्रम तो लाड़ला बेटा था। उसे और क्या कहते। कहीं रूठकर एक-दो जून खाना न खाए, तो आफत ही आ जाए। मुझे पर सारा गुस्सा उतरा। इसकी सोहबत में लड़का बिगड़ जाता है।

‘पर उपदेश कुशल बहुतेरे’ वाली कहावत मेरी आँखों के सामने थी। मुझे बचपन की एक घटना याद आई। होली का दिन था। शराब की एक बोतल मँगवाई गई थी। मेरे मामू साहब उन दिनों आए हुए थे। मैंने चुपके से कोठरी में जाकर गिलास में एक घूँट शराब डाली और पी गया। अभी गला जल ही रहा था और आँखें लाल ही थीं कि मामू साहब कोठरी में आ गए और मुझे मानो सेंध में गिरफ्तार कर लिया और इतना बिगड़े, इतना बिगड़े कि मेरा कलेजा सूखकर छुहारा हो गया; अम्मा ने भी डाँटा, पिताजी ने भी डाँटा। मुझे आँसुओं से उनकी क्रोधाग्नि शांत करनी पड़ी; और दोपहर ही को मामू साहब नशे से पागल होकर गाने लगे। फिर रोए, फिर अम्मा को गालियाँ दी, दादा को मना करने पर भी मारने दौड़े और आखिर में कै करके जमीन पर बेसुध पड़े नजर आए।

विक्रम के पिता, बड़े ठाकुर साहब और चाचा छोटे ठाकुर साहब दोनों जड़वादी थे, पूजा-पाठ की हँसी उड़ानेवाले, पूरे नास्तिक। मगर अब दोनों बड़े निष्ठावान और ईश्वरभक्त हो गए थे। बड़े ठाकुर साहब प्रातःकाल गंगास्नान करने जाते और मंदिरों के चक्कर लगाते हुए दोपहर को सारी देह में चंदन लपेटे घर लौटते। छोटे ठाकुर साहब घर पर ही गर्म पानी से स्नान करते और गठिया से ग्रस्त होने पर भी राम नाम लिखना शुरू कर देते। धूप निकल आने पर पार्क की ओर निकल जाते और चींटियों को आटा खिलाते। शाम होते ही दोनों भाई अपने ठाकुरद्वारे में जा बैठते और आधी रात तक भागवत-कथा तन्मय होकर सुनते। विक्रम के बड़े भाई, प्रकाश को साधु-महात्माओं पर अधिक विश्वास था। वह मठों और साधुओं के अखाड़ों तथा कुटियों की खाक छानते और माताजी को तो भोर से आधी रात तक स्नान, पूजा और व्रत के सिवा दूसरा काम ही न था। उस उम्र में भी उन्हें सिंगार का शौक था; पर आजकल पूरी तपस्विनी बनी हुई थीं। लोग नाहक लालसा को बुरा कहते हैं। मैं तो समझता हूँ, हममें जो यह भक्ति और निष्ठा और धर्म-प्रेम है, वह केवल हमारी लालसा, हमारी हवस के कारण। हमारा धर्म स्वार्थ के बल पर टिका हुआ है। हवस मनुष्य के मन और बुद्धि का इतना संस्कार कर सकती है, यह मेरे लिए बिलकुल नया अनुभव था। हम दोनों भी ज्योतिषियों और पंडितों से कभी-कभी प्रश्न करके अपने को कभी दुखी कर लिया करते थे।

ज्यों-ज्यों लाटरी का दिन समीप आता जाता था, हमारे चित्त की शांति उड़ती जाती थी। हमेशा उसी ओर मन टँगा रहता। मुझे आप-ही-आप अकारण संदेह होने लगा कि कहीं

विक्रम मुझे हिस्सा देने से इंकार न कर दे, तो मैं क्या करूँगा। साफ इंकार कर जाए कि तुमने टिकट में साझा किया ही नहीं। न कोई तहरीर है, न कोई दूसरा सबूत। सब कुछ विक्रम की नीयत पर है। उसकी नीयत जरा भी डाँवाडोल हुई और मेरा काम तमाम। कहीं फरियाद नहीं कर सकता, मुँह तक नहीं खोल सकता, अब अगर कुछ कहूँ भी तो कोई लाभ नहीं। अगर उसकी नीयत में फितूर आ गया है, तब तो वह अभी से इंकार कर देगा। अगर नहीं आया है, तो इस संदेह से उसे मर्मांतक वेदना होगी। आदमी ऐसा तो नहीं है; मगर भाई, दौलत पाकर ईमान सलामत रखना कठिन है। अभी तो रूपए नहीं मिले। इस वक्त ईमानदार बनने में क्या खर्च होता है? परीक्षा का समय तो तब आएगा, जब दस लाख रूपए हाथ में होंगे। मैंने अपने अंतःकरण को टटोला-अगर टिकट मेरे नाम होता और मुझे दस लाख मिल जाते, तो क्या मैं आधे रूपए बिना कान-पूँछ हिलाए विक्रम के हवाले कर देता? कहता-तुमने मुझे पाँच रूपए उधार दिए थे, उसके दस ले लो, सौ ले लो और क्या करोगे; मगर नहीं, मुझसे इतनी बेईमानी न होती।

दूसरे दिन हम दोनों अखबार देख रहे थे कि सहसा विक्रम ने कहा—कहीं हमारा टिकट निकल आए, तो मुझे अफसोस होगा कि नाहक तुमसे साझा किया।

वह सरल भाव से मुस्कुराया, मगर यह थी उसकी आत्मा की झलक, जिसे वह मजाक की आड़ में छिपाना चाहता था।

मैंने चौंककर कहा—सच! लेकिन इसी तरह मुझे भी तो अफसोस हो सकता है?

‘लेकिन टिकट तो मेरे नाम का है।’

अच्छा मान लो, मैं तुम्हारे साझे से इंकार कर जाऊँ? ’

मेरा खून सर्द हो गया। आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

‘मैं तुम्हें इतना बदनीयत नहीं समझता था।’

‘मगर है बहुत संभव पाँच लाख! सोचो। दिमाग चकरा जाता है।’

‘तो भई, अभी कुशल है, लिखा-पढ़ी कर लो। यह संशय रहे ही क्यों!’

विक्रम ने हँसकर कहा—तुम बड़े शक्की हो यार! मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। भला, ऐसा कहीं हो सकता है? पाँच लाख क्या, पाँच करोड़ भी हों, तब भी ईश्वर चाहेगा, तो नीयत में फर्क न आने दूँगा।

किंतु मुझे उसके इन आश्वासनों पर बिलकुल विश्वास न आया। मन में एक संशय पैठ गया।

मैंने कहा— यह तो मैं जानता हूँ, तुम्हारी नीयत कभी विचलित नहीं हो सकती, पर लिखा-पढ़ी कर लेने में क्या हर्ज है?

‘फजूल ही सही।’

तो पक्के कागज पर लिखना पड़ेगा। दस लाख की कोर्ट फीस ही साढ़े सात हजार हो जाएगी। किस भ्रम में हैं आप? ’

मैंने सोचा, बला से, सादी लिखा-पढ़ी के बल पर क़ानूनी कार्यवाही न कर सकूँगा। पर इन्हें लज्जित करने का, इन्हें जलील करने का, इन्हें सबके सामने बेईमान सिद्ध करने का

अवसर तो मेरे हाथ आएगा। और दुनिया में बदनामी का भय न हो तो आदमी न जाने क्या करे। अपमान का भय कानून के भय से किसी तरह कम क्रियाशील नहीं होता; बोला—मुझे सादे कागज पर ही विश्वास हो जाएगा।

विक्रम ने लापरवाही से कहा—जिस कागज का कोई कानूनी महत्व नहीं, उसे लिखकर क्यों समय नष्ट करें?

मुझे निश्चय हो गया कि विक्रम की नीयत में अभी से फ़र्क आ गया। नहीं तो सादा कागज लिखने में क्या बाधा हो सकती है? बिगड़कर कहा—तुम्हारी नीयत तो अभी से खराब हो गई है।

उसने निर्लज्जता से कहा—तो क्या तुम साबित करना चाहते हो कि ऐसी दशा में तुम्हारी नीयत न बदलती?

‘मेरी नीयत इतनी कमजोर नहीं है।’

‘रहने भी दो। बड़े नीयत वाले। अच्छे-अच्छों को देखा है। तुम्हें इसी वक्त लेखबद्ध होना पड़ेगा। मुझे तुम पर विश्वास नहीं रहा।’

‘अगर तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं, तो मैं भी नहीं लिखता।’

‘तो क्या तुम समझते हो, तुम मेरे रूपए हजम कर जाओगे?’

‘किसके रूपए और कैसे रूपए?’

‘मैं कहे देता हूँ विक्रम, हमारी दोस्ती का ही अंत न हो जाएगा, बल्कि इससे कहीं भयंकर परिणाम होंगे।’

हिंसा की एक ज्वाला-सी मेरे अंदर दहक उठी।

सहसा दीवानखाने में झड़प की आवाज सुनकर मेरा ध्यान उधर चला गया। जहाँ दोनों ठाकुर बैठा करते थे। उनमें ऐसी मैत्री थी, जो आदर्श भाइयों में ही हो सकती है। राम और लक्ष्मण में भी इतनी ही रही होगी। झड़प की तो बात ही क्या, मैंने उनमें कभी विवाद होते भी न सुना था। बड़े ठाकुर जो कह दें, वह छोटे ठाकुर के लिए कानून था और छोटे ठाकुर की इच्छा देखकर ही बड़े ठाकुर कोई बात कहते थे। हम दोनों को आश्चर्य हुआ। दीवानखाने के द्वार पर जाकर खड़े हो गए। दोनों भाई अपनी-अपनी कुर्सियों से उठकर खड़े हो गए थे, एक-एक कदम आगे भी बढ़ आए थे। आँखें लाल, मुख विकृत, तयोरियाँ चढ़ी हुई, मुट्ठियाँ बँधी हुई। मालूम होता था, बस हाथापाई हुआ ही चाहती है।

छोटे ठाकुर ने हमें देखकर पीछे हटते हुए कहा—सम्मिलित परिवार में जो कुछ भी और कहीं से भी और किसी के नाम भी आए, वह सबका है, बराबर।

बड़े ठाकुर ने विक्रम को देखकर एक कदम और आगे बढ़ाया—हरगिज नहीं, अगर मैं कोई जुर्म करूँ, तो मैं पकड़ा जाऊँगा, सम्मिलित परिवार नहीं। मुझे सजा मिलेगी, सम्मिलित परिवार को नहीं। यह वैयक्तिक प्रश्न है।

‘इसका फैसला अदालत से होगा।’

‘शौक से अदालत जाइए। अगर मेरे लड़के, मेरी बीवी या मेरे नाम लाटरी मिली, तो आपका उससे कोई संबंध न होगा, उसी तरह जैसे आपके नाम लाटरी निकले, तो मुझसे,

मेरी बीवी से या मेरे लड़के से उससे कोई संबंध न होगा।'

'अगर मैं जानता कि आपकी ऐसी नीयत है, तो मैं भी बीवी-बच्चों के नाम से टिकट ले सकता था।'

'यह आपकी गलती है।'

'इसीलिए कि मुझे विश्वास था, आप भाई हैं।'

'यह जुआ है, आपको समझ लेना चाहिए था। जुए की हार-जीत का खानदान पर कोई असर नहीं पड़ सकता। अगर आप कल को दस-पाँच हजार रेस में हार आएँ तो खानदान उसका जिम्मेदार न होगा।'

'मगर भाई का हक दबाकर आप सुखी नहीं रह सकते।'

'आप न ब्रह्मा हैं, न कोई महात्मा।'

विक्रम की माता ने सुना कि दोनों भाइयों में ठनी हुई है और मल्लयुद्ध हुआ चाहता है, तो दौड़ी हुई बाहर आई और दोनों को समझाने लगीं।

छोटे ठाकुर ने बिगड़कर कहा— आप मुझे क्या समझाती हैं, उन्हें समझाइए जो चार-चार टिकट लिए हुए बैठे हैं। मेरे पास क्या है, एक टिकट। उसका क्या भरोसा! मेरी अपेक्षा जिन्हें रूपए मिलने का चौगुना चांस है, उनकी नीयत बिगड़ जाए, तो लज्जा और दुख की बात है।

ठकुराइन ने देवर को दिलासा देते हुए कहा—अच्छा, मेरे रूपए में से आधे तुम्हारे। अब तो खुश हो?

बड़े ठाकुर ने बीवी की जबान पकड़ी—क्यों आधे ले लेंगे? मैं एक धेला भी न दूँगा। हम मुरौवत और सहृदयता से काम लें, फिर भी उन्हें पाँचवें हिस्से से ज्यादा किसी तरह न मिलेगा। आधे का दावा किस नियम से हो सकता है?—न बौद्धिक, न धार्मिक, न नैतिक।

छोटे ठाकुर ने खिसियाकर कहा—सारी दुनिया का कानून आप ही तो जानते हैं।

'जानते ही हैं, तीस साल तक वकालत नहीं की है? '

'यह वकालत निकल जाएगी, जब सामने कलकत्ते का बैरिस्टर खड़ा कर दूँगा।'

'बैरिस्टर की ऐसी-तैसी, चाहे वह कलकत्ते का हो या लंदन का।'

'मैं आधा लूँगा, उसी तरह जैसे घर की जायदाद में मेरा आधा है।'

इतने में विक्रम के बड़े भाई साहब सिर और हाथ में पट्टी बाँधे, लँगड़ाते हुए कपड़ों पर ताजा खून के दाग लगाए, प्रसन्न मुख आकर एक आरामकुर्सी पर गिर पड़े। बड़े ठाकुर ने घबराकर पूछा—यह तुम्हारी क्या हालत है जी? ऐं, यह चोट कैसे लगी? किसी से मार-पीट तो नहीं हो गई।

प्रकाश ने कुर्सी पर लेटकर एक बार कराहा, फिर मुस्काराकर बोले—जी, कोई बात नहीं। ऐसी कुछ बहुत चोट नहीं लगी।

'कैसे कहते हो कि चोट नहीं लगी? सारा हाथ और सिर सूज गया है। कपड़े खून से तर। यह मुआमला क्या है? कोई मोटर दुर्घटना तो नहीं हो गई? '

'बहुत मामूली चोट है साहब, दो-चार दिन में अच्छी हो जाएगी। घबराने की कोई बात

नहीं।’

प्रकाश के मुख पर आशापूर्ण, शांत मुसकान थी। क्रोध, लज्जा या प्रतिशोध की भावना का नाम भी न था।

बड़े ठाकुर ने व्यग्र होकर पूछा—लेकिन हुआ क्या, यह क्यों नहीं बतलाते? किसी से मार-पीट हुई हो तो थाने में रपट करवा दूँ?

प्रकाश ने हलके मन से कहा—मार-पीट किसी से नहीं हुई साहब। बात यह है कि मैं जरा झक्कड़ बाबा के पास चला गया था। आप तो जानते हैं, वह आदमियों की सूरत से भागते हैं और पत्थर लेकर मारने दौड़ते हैं। जो डरकर भागा, वह गया। जो पत्थर की चोटें खाकर भी उनके पीछे लगा रहा, वह पारस हो गया। वह यही परीक्षा लेते हैं। आज मैं वहाँ पहुँचा, तो कोई पचास आदमी जमा थे, कोई मिठाई लिए, कोई बहुमूल्य भेंट लिए, कोई कपड़ों का थान लिए। झक्कड़ बाबा ध्यानावस्था में बैठे थे। एकाएक उन्होंने आँखें खोलीं और यह जन-समूह देखा, तो कई पत्थर चुनकर उनके पीछे दौड़े। फिर क्या था, भगदड़ मच गई। लोग गिरते-पड़ते भागे। हुर्र हो गए। एक भी न टिका। अकेला मैं घंटाघर की तरह डटा रहा। बस उन्होंने पत्थर चला ही तो दिया। पहला निशाना सिर में लगा। उनका निशाना अचूक पड़ता है। खोपड़ी भन्ना गई, खून की धार बह चली; लेकिन मैं हिला नहीं। फिर बाबा जी ने दूसरा पत्थर फेंका। वह हाथ में लगा। मैं गिर पड़ा और बेहोश हो गया। जब होश आया, तो वहाँ सन्नाटा था। बाबाजी भी गायब हो गए थे। अंतर्धान हो जाया करते हैं। किसे पुकारूँ, किससे सवारी लाने को कहूँ? मारे दर्द के हाथ कटा पड़ता था और सिर से अभी तक खून जारी था। किसी तरह उठा और सीधा डाक्टर के पास गया। उन्होंने देखकर कहा—हड्डी टूट गई है और पट्टी बाँध दी; गर्म पानी से सेंकने को कहा है। शाम को फिर आवेंगे। मगर चोट लगी तो लगी, अब लाटरी मेरे नाम आई धरी है। यह निश्चित है। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि झक्कड़ बाबा की मार खाकर कोई नामुराद रह गया हो। मैं तो सबसे पहले बाबा की कुटी बनवा दूँगा।

बड़े ठाकुर साहब के मुख पर संतोष की झलक दिखाई दी। फौरन पलंग बिछ गया। प्रकाश उस पर लेटे। ठकुराइन पंखा झलने लगीं, उनका भी मुख प्रसन्न था। इतनी चोट खाकर दस लाख पा जाना कोई बुरा सौदा न था।

छोटे ठाकुर के पेट में चूहे दौड़ रहे थे। ज्यों ही बड़े ठाकुर भोजन करने गए और ठकुराइन भी प्रकाश के लिए भोजन का प्रबंध करने गई, त्यों ही छोटे ठाकुर ने प्रकाश से पूछा—क्या बहुत जोर से पत्थर मारते हैं? जोर से तो क्या मारते होंगे?

प्रकाश ने उनका आशय समझकर कहा—अरे, पत्थर नहीं मारते, बमगोला मारते हैं। देव-सा डील-डौल है, और बलवान इतने हैं कि एक घूँसे में शेर का काम तमाम कर देते हैं। कोई ऐसा-वैसा आदमी हो, तो एक पत्थर में टें हो जाए। कितने ही तो मर गए; मगर आज तक झक्कड़ बाबा पर मुकदमा नहीं चला। और दो-चार पत्थर मारकर ही नहीं रह जाते, जब तक आप गिर न पड़ें और बेहोश न हो जाएँ, वह मारते ही जाएँगे; मगर रहस्य यही है कि आप जितनी ज्यादा चोटें खाएँगे, उतने ही अपने उद्देश्य के निकट पहुँचेंगे।

प्रकाश ने ऐसा रोएँ खड़े कर देने वाला चित्र खींचा कि छोटे ठाकुर साहब थर्रा उठे। पत्थर खाने की हिम्मत न पड़ी।

आखिर भाग्य के निपटारे का दिन आया-जुलाई की बीसवीं तारीख कत्ल की रात। हम प्रातःकाल उठे, तो जैसे एक नशा चढ़ा हुआ था, आशा और भय के द्वंद्व का। दोनों ठाकुरों ने घड़ी रात रहे गंगास्नान किया था और मंदिर में बैठे पूजन कर रहे थे। आज मेरे मन में श्रद्धा जागी। मंदिर में जाकर मन-ही-मन ठाकुरजी की स्तुति करने लगा-अनाथों के नाथ, तुम्हारी कृपादृष्टि क्या हमारे ऊपर न होगी? तुम्हें क्या मालूम नहीं, हमने कितनी मुश्किल से टिकट खरीदे हैं। तुम अंतर्दामी हो। संसार में सबसे ज्यादा तुम्हारी दया कौन डिजर्व (deserve) करता है? विक्रम सूट-बूट पहने मंदिर के द्वार पर आया, मुझे इशारे से बुलाकर इतना कहा—मैं डाकखाने जाता हूँ और हवा हो गया। जरा देर में प्रकाश मिठाई के थाल लिए हुए घर में से निकले और मंदिर के द्वार पर खड़े कंगालों को बाँटने लगे, जिनकी एक भीड़ जमा हो गई थी। और दोनों ठाकुर भगवान के चरणों में लौ लगाए हुए थे—सिर झुकाए, आँखें बंद, अनुराग में डूबे हुए।

बड़े ठाकुर ने सिर उठाकर पुजारी की ओर देखा और बोले—भगवान तो बड़े भक्त-वत्सल हैं, क्यों पुजारी जी?

पुजारी ने समर्थन किया—हाँ सरकार, भक्तों की रक्षा के लिए तो क्षीरसागर से दौड़े और गज को ग्राह के मुँह से बचाया।

एक क्षण के बाद छोटे ठाकुर ने सिर उठाया और पुजारी जी से बोले—क्यों पुजारी जी, भगवान तो सर्वशक्तिमान हैं, अंतर्दामी, सबके दिल का हाल जानते हैं?

पुजारी जी ने समर्थन किए—हाँ सरकार, अंतर्दामी न होते तो सबके मन की बात कैसे जान जाते? शबरी का प्रेम देखकर स्वयं उसकी मनोकामना पूरी की।

पूजन समाप्त हुआ। आरती हुई। दोनों भाइयों ने आज ऊँचे स्वर में आरती गाई और बड़े ठाकुर ने दो रूपए थाल में डाले। छोटे ठाकुर ने चार रूपए डाले। बड़े ठाकुर ने एक बार कोप-दृष्टि से देखा और मुँह फेर लिया।

सहसा बड़े ठाकुर ने पुजारी जी से पूछा—तुम्हारा मन क्या कहता है पुजारी जी?

पुजारी बोला—सरकार की फतह है।

छोटे ठाकुर ने पूछा—और मेरी?

पुजारी ने उसी मुस्तैदी से कहा—आपकी भी फतह है।

बड़े ठाकुर श्रद्धा से डूबे भजन गाते हुए मंदिर से निकले।

‘प्रभु जी, मैं तो आयो सरन तिहारे, हाँ प्रभु जी....’

एक मिनट में छोटे ठाकुर भी मंदिर से गाते हुए निकले।

‘अब पत राखे मोरे दयानिधि, तोरी गति लखि न परे....’

मैं भी पीछे निकला और जाकर मिठाई बाँटने में प्रकाश बाबू की मदद करनी चाही, पर उन्होंने थाल हटाकर कहा—आप रहने दीजिए, मैं अभी बाँटे डालता हूँ। अब रह ही कितना



गई है?

मैं खिसियाकर डाकखाने की तरफ चला कि तभी विक्रम मुस्कुराता हुआ साइकिल पर आ पहुँचा। उसे देखते ही सभी जैसे पागल हो गए। दोनों ठाकुर सामने खड़े थे। दोनों ठाकुर बाज की तरह झपटे। प्रकाश की थाल में थोड़ी-सी मिठाई बच रही थी। उसने थाल जमीन पर पटका और दौड़ा। और मैंने तो उस उन्माद में विक्रम को गोद में उठा लिया; मगर कोई उससे कुछ पूछता ही नहीं, सभी जय-जयकार की हॉक लगा रहे हैं।

बड़े ठाकुर ने आकाश की ओर देखा—बोलो राजा रामचंद्र की जय!

छोटे ठाकुर ने छल्लांग मारी—बोलो—हनुमान जी की जय!

प्रकाश तालियाँ बजाता हुआ बोला—दुहाई झक्कड़ बाबा की।

विक्रम ने जोर से कहकहा मारा, फिर अलग खड़ा होकर बोला—जिसका नाम आया है, उससे एक लाख लूँगा। बोलो, है मंजूर?

बड़े ठाकुर ने उसका हाथ पकड़ा—पहले बता तो।

‘ना! यों नहीं बताता।’

छोटे ठाकुर बिगड़े—बताने के लिए लाख? शाबास।

प्रकाश ने त्योंरी चढ़ाई—क्या डाकखाना हमने देखा नहीं है?

‘अच्छा तो अपना नाम सुनने के लिए तैयार हो जाओ।’

सभी लोग फौजी—अटेंशन की दशा में निश्चल खड़े हो गए।

‘होश हवास ठीक रखना।’

सभी पूर्ण सचेत हो गए।

‘अच्छा, तो सुनिए कान खोलकर। इस शहर का सफाया है। इस शहर का ही नहीं, संपूर्ण भारत का सफाया है। अमरीका के एक हब्शी का नाम आ गया।

बड़े ठाकुर झल्लाए—झूठ-झूठ, बिलकुल झूठ।

छोटे ठाकुर ने पैतरा बदला—कभी नहीं। तीन महीने की तपस्या यों ही रही? वाह!

प्रकाश ने छाती ठोंककर कहा—यहाँ सिर फुड़वाए और हाथ तुड़वाए बैठे हैं, दिल्लगी है।

इतने में और पचीसों आदमी उधर से रोनी सूरत लिए निकले। वे बेचारे भी डाकखाने से अपनी किस्मत को रोते चले आ रहे थे—मार ले गया, अमरीका का हब्शी! अभागा! पिशाच! दुष्ट!

अब कैसे किसी को विश्वास न आता? बड़े ठाकुर झल्लाए हुए मंदिर में गए और पुजारी को डिसमिस कर दिया—इसीलिए तुम्हें इतने दिनों से पाल रखा है। हराम का माल खाते हो और चैन करते हो!

छोटे ठाकुर साहब की तो जैसे कमर टूट गई। दो-तीन बार सिर पीटा और वहीं बैठ गए। मगर प्रकाश के क्रोध का पारावार न था। उसने अपना मोटा-सोंटा लिया और झक्कड़ बाबा की मरम्मत करने चला।

माता जी ने केवल इतना कहा—सबों ने बेईमानी की है। मैं कभी मानने की नहीं। हमारे

देवता क्या करें? किसी के हाथ से थोड़े ही छीन लाएँगे?

रात को किसी ने खाना नहीं खाया। मैं भी उदास बैठा हुआ था कि विक्रम आकर बोला—चलो, होटल से कुछ खा आएँ। घर में तो चूल्हा नहीं जला।

मैंने पूछा—तुम डाकखाने से आए तो बहुत प्रसन्न क्यों थे?

उसने कहा—जब मैंने डाकखाने के सामने हजारों की भीड़ देखी, तो मुझे अपने लोगों के गंधेपन पर हँसी आई। एक शहर में जब इतने आदमी हैं, तो सारे हिंदुस्तान में इसके हजार गुने से कम न होंगे और दुनिया में तो लाख गुने से भी ज्यादा हो जाएँगे। मैंने आशा का जो एक पर्वत-सा खड़ा कर रखा था, वह एकबारगी इतना छोटा हुआ कि राई बन गया और मुझे हँसी आई। जैसे कोई दानी पुरूष छटाँक भर अन्न हाथ में लेकर एक लाख आदमियों को न्यौता दे बैठे—और यहाँ हमारे घर का एक-एक आदमी समझ रहा है कि...

मैं भी हँसा—हाँ, बात तो यथार्थ में यही है और हम दोनों लिखा-पढ़ी के लिए लड़े मरते थे; मगर सच बताना, तुम्हारी नीयत खराब हुई थी कि नहीं?

विक्रम मुसकुराकर बोला—अब क्या करोगे पूछकर? पर्दा ढका रहने दो।

## शतरंज के खिलाड़ी

वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफीम की पीनक ही के मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्रावधान था। शासन-विभाग में, साहित्य क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला-कौशल में, उद्योग-धंधों में, आहार-विहार में सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। कर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे में, इत्र, मस्सी और उबटन का रोजगार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही है। कहीं चौरस बिछी हुई है। पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फकीरों को पैसे मिलते तो वे रोटियाँ न लेकर अफीम खाते या मादक पीते। शतरंज, ताश, गंजीफा खेलने में बुद्धि तीव्र होती है, विचार शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है, ये दलीलें जोर के साथ पेश की जाती थीं। (इस संप्रदाय के लोगों से दुनिया अब भी खाली नहीं है।) इसलिए अगर मिर्जा सज्जादअली और मीर रौशनअली अपना अधिकांश समय बुद्धि-तीव्र करने में व्यतीत करते थे तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थीं, जीविका की कोई चिंता न थी। घर में बैठे चखौतियाँ करते। आखिर और करते ही क्या? प्रातःकाल दोनों मित्र नाश्ता करके बिसात बिछाकर बैठ जाते, मुहरे सज जाते और लड़ाई के दाँवपेंच होने लगते थे। फिर खबर न होती थी कि कब दोपहर हुई, कब तीसरा पहर, कब शाम। घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता था-‘खाना तैयार है।’ यहाँ से जवाब मिलता, ‘चलो आते हैं, दस्तरख्वान बिछाओ।’ यहाँ तक कि बाबर्ची विवश होकर कमरे ही में खाना रख जाता था और दोनों मित्र दोनों काम साथ-साथ करते थे मिर्जा सज्जादअली के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा न था, इसलिए उन्हीं के दीवानखाने में बाजियाँ होती थीं; मगर यह बात न थी कि मिर्जा के घर के और लोग उसके इस व्यवहार से खुश हों। घरवाली का तो कहना ही क्या, मुहल्ले वाले घर के नौकर-चाकर तक नित्य द्वेषपूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे—‘बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। खुदा न करे किसी को इसकी चाट पड़े। आदमी दीन-दुनिया किसी के काम का नहीं रहता, न घर का, न घाट का। बुरा रोग है। यहाँ तक कि मिर्जा की बेगम साहबा को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोजकर पति को लताड़ती थीं। पर उन्हें इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोचती ही रहती थीं, तब तक उधर बाजी बिछ जाती थी। और रात को जब सो

जाती थीं, तब कहीं मिर्जा जी भीतर आते थे। हाँ, नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थीं—‘क्या पान माँगे है? कह दो आकर ले जाएँ। खाने की भी फुर्सत नहीं है? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो, खाएँ चाहें कुत्ते को खिलावें।’ पर रूबरू वह भी कुछ न कह सकती थीं। उनको अपने पति से उतना मलाल न था, जितना मीर साहब से। उन्होंने उसका नाम मीर बिगाड़ रख छोड़ा था। शायद मिर्जा जी अपनी सफाई देने के लिए सारा इल्जाम मीर साहब ही के सिर थोप देते थे।

एक दिन बेगम साहबा के सिर में दर्द होने लगा। उन्होंने लौंडी से कहा, ‘जाकर मिर्जा साहब को बुला ला। किसी हकीम के यहाँ से दवा लाएँ। दौड़, जल्दी कर।’ लौंडी गई तो मिर्जा ने कहा, ‘चल अभी आते हैं।’ बेगम साहबा का मिजाज गरम था। इतनी तसल्ली कहाँ कि उनके सिर में दर्द हो और पति शंतरज खेलता रहे। चेहरा सुर्ख हो गया। लौंडी से कहा, ‘जाकर कह, अभी चलिए नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जाएँगी।’ मिर्जा जी बड़ी दिलचस्प बाजी खेल रहे थे; दो ही किशतों में मीर साहब की मात हुई जाती थी, झुँझलाकर बोले, ‘क्या ऐसा दम लबों पर है? जरा सब्र नहीं होता?’

मीर—जी हाँ, जाकर सुन ही आइए न। औरतें नाजुक-मिजाज होती हैं।

मिर्जा—जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ। दो किशतों में आपकी मात होती है।

मीर—जनाब, इस भरोसे न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहें, और मात हो जाए। पर जाइए, सुन आइए, क्यों खुवामह-ख्वाह उनका दिल दुखाइएगा?

मिजा—इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर—मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइए।

मिर्जा—अरे यार, जाना ही पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर दर्द खाक नहीं है, मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर—कुछ भी हो; उसकी खातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिर्जा—अच्छा, एक चाल और चल लूँ।

मीर—हरगिज नहीं, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरों में हाथ न लगाऊँगा।

मिर्जा साहब मजबूर होकर अंदर गए तो बेगम साहबा ने त्योंतियाँ बदलकर, लेकिन कराहते हुए कहा, तमूँ निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है। चाहे कोई मर ही जाए, पर उठने का नाम नहीं लेते। नौज कोई तुम जैसा आदमी हो!

मिर्जा—क्या कहूँ, मीर साहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ाकर आया हूँ।

बेगम—क्या जैसे वह खुद निखटू हैं, वैसे ही सबको समझते हैं? उनके भी बाल-बच्चे हैं, या सबका सफाया कर डाला है?

मिर्जा—बड़ा लती आदमी है। जब आ जाता है तब मजबूर होकर मुझे खेलना ही पड़ता है।

बेगम—दुत्कार क्यों नहीं देते?

मिर्जा—बराबर का आदमी है, उम्र में, दर्जे में, मुझसे दो अंगुल ऊँचे। मुलाहिजा करना ही पड़ता है।

बेगम—तो मैं ही दुत्कार देती हूँ। नाराज हो जाएँगे, हो जाएँ। कौन किसी की रोटियाँ चला देता है। रानी रूठेगी, अपना सुहाग लेंगी। हिरिया, बाहर से शतरंज उठा ला। मीर साहब से कहना, मियाँ अब न खेलेंगे, आप तशरीफ ले जाइए।

मिर्जा—हाँ-हाँ, कहीं ऐसा गजब भी न करना। जलील करना चाहती हो क्या; ठहर हिरिया, कहाँ जाती है?

बेगम—जाने क्यों नहीं देते? मेरे ही खून पिए, जो उसे रोके। अच्छा उसे रोका, मुझे रोको तो जानूँ।

यह कहकर बेगम साहबा झल्लाई हुई दीवानखाने की तरफ चलीं। मिर्जा बेचारे का रंग उड़ गया। बीवी की मिन्नतें करने लगे, 'खुदा के लिए, तुम्हें हजरत हुसैन की कसम। मेरी ही मैयत देखे, जो उधर जाए।' लेकिन बेगम ने एक न मानी। दीवानखाने के द्वार तक चली गई। पर एकाएक परपुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध से गए। भीतर झाँका, संयोग से कमरा खाली था; मीर साहब ने दो-एक मुहरे इधर-उधर कर दिए थे और अपनी सफाई बताने के लिए बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेगम ने अंदर पहुँचकर बाजी उलट दी; मुहरे कुछ तख्त के नीचे फेंक दिए, कुछ बाहर और किवाड़ अंदर से बंद करके कुंडी लगा दी। मीर साहब दरवाजे पर तो थे ही, मुहरें बाहर फेंके जाते देख, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाजा बंद हुआ, तो समझ गए बेगम साहबा बिगड़ गई। घर की राह ली।

मिर्जा ने कहा, तुमने गजब किया।

बेगम—अब, मीर साहब इधर आए तो खड़े-खड़े निकलवा दूँगी। इतनी लौ खुदा में लगाते तो क्या गरीब हो जाते? आप तो शतरंज खेलें और मैं यही चूल्हे-चक्की की फिक्र में सिर खपाऊँ। बोले, जाते हो हकीम साहब के यहाँ कि अब भी ताम्बूल है? '

मिर्जा घर से निकले तो हकीम के घर जाने के बदले मीर साहब के घर पहुँचे और सारा वृत्तांत कहा। मीर साहब बोले, 'मैंने तो जब मुहरें बाहर आते देखे, तभी ताड़ गया। फौरन भागा। बड़ी गुस्सेवर मालूम होती हैं। मगर आपने उन्हें यों सिर चढ़ा रखा है यह मुनासिब नहीं। उन्हें इससे क्या मतलब कि आप बाहर क्या करते हैं। घर का इंतजाम करना उनका काम है, दूसरी बातों से उन्हें क्या सरोकार?

मिर्जा—खैर, यह तो बताइए, अब कहाँ जमाव होगा?

मीर—इसका क्या गम? इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है? बस यहीं जमे।

मिर्जा—लेकिन बेगम साहब को कैसे मनाऊँगा? जब घर पर बैठा रहता था तब तो वह इतना बिगड़ती थीं, यहाँ बैठक होगी तो शायद जिंदा न छोड़ेंगी।

मीर—अजी बकने भी दीजिए, दो-चार रोज मैं आप ही ठीक हो जाएँगी। हाँ, आप इतना कीजिए कि आज से जरा तन जाइए।

मीर साहब की बेगम ने किसी अज्ञात कारण से उनका घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थीं। इसलिए वह उनके शतरंज-प्रेम की कभी आलोचना न करतीं बल्कि कभी-कभी मीर साहब को देर हो जाती तो याद दिला देती थीं। इन कारणों से मीर साहब को भ्रम हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यंत विनयशील और गंभीर है। लेकिन जब दीवानखाने में

बिसात बिछने लगी, और मीर साहब दिन भर घर में रहने लगे तो उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता में बाधा पड़ गई। दिन-भर दरवाजे पर झाँकने को तरस जातीं।

उधर नौकरों में काना-फूसी होने लगी। अब तक दिन-भर पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर में चाहे कोई आवे, चाहे कोई जाए, इनसे कुछ मतलब न था। आठों पहर की धौंस हो गई। कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई लाने का। और हुक्का तो किसी प्रेमी हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था। वे बेगम साहब से जा-जाकर कहते, हुजूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई। दिन भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गए। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे तो शाम ही कर दी। घड़ी आध घड़ी दिल-बहलाव के लिए खेल लेना बहुत है। खैर, हमें तो कोई शिकायत नहीं, हुजूर के गुलाम हैं, जो हुक्म होगा बजा ही लावेंगे; मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलनेवाला कभी पनपता नहीं, घर पर कोई न कोई आफत जरूर आती है। यहाँ तक कि यही चर्चा होती रहती है। हुजूर का नमक खाते हैं। अपने आका की बुराई सुन-सुनकर रंज होता है। मगर क्या करें? इस पर बेगम साहिबा कहती—मैं तो खुद इसको पसंद नहीं करती, पर वह किसी की सुनते ही नहीं, क्या किया जाए?

मुहल्ले में दो-चार पुराने जमाने के लोग थे। वे आपस में भाँति-भाँति के अमंगल की कल्पनाएँ करने लगे, अब खैरियत नहीं है। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का खुदा ही हाफिज। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी। आसार बुरे हैं।

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फरियाद सुननेवाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची चली आती थी, और वह वेश्याओं में, भांडों में और विलासता के अन्य अंगों की पूर्ति में उड़ जाती थी। अँगरेजी कंपनी का ऋण दिन-पर-दिन बढ़ता जाता था। कमली दिन-दिन भोग कर भारी होती जाती थी। देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। रेजीडेंट बार-बार चेतावनी देता था, पर यहाँ तो लोग विलासिता के नशे में चूर थे। किसी के कानों पर जूँ न रेंगती थी।

खैर, मीर साहब के दीवानखाने में शतरंज होते कई महीने गुजर गए। नए-नए नक्शे हल किए जाते, नए-नए किले बनाए जाते, नित नई व्यूह रचना होती, कभी-कभी खेलते-खेलते भीड़ हो जाती। तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती। पर शीघ्र ही दोनों में मेल हो जाता। कभी-कभी ऐसा भी होता कि बाजी उठा दी जाती, मिर्जा जी रूठकर अपने घर चले जाते। मीर साहब अपने घर में बैठते। पर रात-भर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शांत हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानखाने में आ पहुँचते थे।

एक दिन दोनों मित्र शतरंज की दलदल में गोते खा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फौज का अफसर मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीर साहब के होश उड़ गए। यह क्या बला सिर पर आई? यह तलबी किसलिए हुई? अब खैरियत नहीं नजर आती। घर के दरवाजे बंद कर लिए। नौकर से बोले, कह दो, घर में नहीं हैं।

सवार—घर में नहीं, तो कहाँ है?

नौकर—यह मैं नहीं जानता। क्या काम है?

सवार—काम तुझे क्या बतलाऊँ? हुजूर में तलबी है, शायद फौज के लिए कुछ सिपाही माँगे गए हैं। जागीरदार हैं कि दिल्लगी? मोरचे पर जाना पड़ेगा तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा।

नौकर—अच्छा तो जाइए, कह दिया जाएगा।

सवार—कहने की बात नहीं। कल मैं खुद आऊँगा। साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीर साहब की आत्मा काँप उठी। मिर्जा जी से बोले, कहिए जनाब, अब क्या होगा?

मिर्जा—बड़ी मुसीबत है कहीं मेरी भी तलबी न हो।

मीर—कम्बख्त कल आने की कह गया है।

मिर्जा—आफत है, और क्या। कहीं मोरचे पर जाना पड़ता तो बेमौत मरे।

मीर—बस, यही एक तदबीर है कि घर पर मिलें ही नहीं कल से गोमती पर कहीं वीराने में नक्शा जमे। वहाँ किसे खबर होगी? हजरत आकर लौट जाएँगे।

मिर्जा—वल्लाह, आपको खूब सूझी! इसके सिवा कोई तदबीर नहीं है।

इधर मीर साहब की बेगम उस सवार से कह रही थी, तुमने खूब धत्ता बताई।

उसने जवाब दिया, ऐसे गावदियों को तो चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अक्ल और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली। अब भूलकर भी घर न रहेंगे।

दूसरे दिन दोनों मित्र मुँह-अँधेरे निकल खड़े होते। बगल में एक छोटी-सी दरी दबाए, डिब्बे में गिलोरियाँ भरे, गोमती पार कर एक पुरानी वीरान मसजिद में चले जाते, जिसे शायद नवाब आसफउद्दौला ने बनवाया था। रास्ते में तंबाकू, चिलम और मदरिया ले लेते और मसजिद में पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भर, शतरंज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हें दीन-दुनिया की फिक्र न रहती थी। 'किश्त', 'शह' आदि दो-एक शब्दों के सिवा मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होता। दोपहर को जब भूख मालूम होती तो दोनों मित्र किसी नानबाई की दुकान पर जाकर खाना खा आते और एक चिलम हुक्का पीकर फिर संग्राम-क्षेत्र में डट जाते। कभी-कभी उन्हें भोजन का भी खयाल न रहता था।

इधर देश की राजनीति दशा भयंकर होती जा रही थी। कंपनी की फौजें लखनऊ की तरफ बढ़ी चली आती थीं। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल-बच्चों को ले-लेकर देहातों में भाग रहे थे। पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी जरा भी फिक्र न थी। वे घर से आते तो गालियों में से होकर। डर था कि कहीं किसी बादशाही मुलाजिम की निगाह न पड़ जाए, नहीं तो बेगार में पकड़े जाएँ। हजारों रूपए सालाना की जागीर मुफ्त में ही हजम करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसजिद के खंडहर में बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। मिर्जा की बाजी कुछ कमजोर थी। मीर साहब उन्हें किश्त पर किश्त दे रहे थे। इतने में कंपनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिए। यह गोरों की फौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिए आ

रही थी।

मीर साहब बोले, अँगरेजी फौज आ रही है खुदा खैर करे।

मिर्जा—आने दीजिए, किश्त बचाइए। लो यह किश्त!

मीर—जरा देखना चाहिए; यहीं आड़ में खड़े हो जाएँ।

मिर्जा—देख लीजिएगा, जल्दी क्या है, फिर किश्त!

मीर—तोपखाना भी है। कोई पाँच हजार आदमी होंगे। कैसे जवान हैं। लाल बंदरों से मुँह हैं। सूरत देखकर खौफ होता है।

मिर्जा—जनाब हीले न कीजिए। ये चकमे किसी और को दीजिएगा, यह किश्त!

मीर—आप भी अजीब आदमी हैं। यहाँ तो शहर पर आफत आई हुई है और आपको किश्त की सूझी है। कुछ इसकी खबर है कि शहर घिर गया तो घर कैसे चलेंगे?

मिर्जा—जब चलने का वक्त आएगा तो देखी जाएगी, यह किश्त, बस अबकी शह में मात है।

फौज निकल गई। दस बजे का समय था। फिर बाजी बिछ गई। मिर्जा बोले आज खाने की कैसी ठहरेगी?

मीर—अजी, आज तो रोजा है। क्या आपको भूख ज्यादा मालूम होती है?

मिर्जा—जी नहीं। शहर में जाने क्या हो रहा है?

मीर—शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा-खाकर आराम से सो रहे होंगे। हुजूर नवाब भी ऐशगाह में होंगे।

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे तो तीन बज गए। अब की मिर्जा की बाजी कमजोर थी। चार का गजर बज रहा था कि फौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली शाह पकड़ लिए गए थे और उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिए जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी खून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से, इस तरह खूब बहे बिना न हुई होगी। यह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसनन होते हैं। यह कायरपन था, जिस पर बड़े से बड़े कायर आँसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नबाव बंदी बना चला जाता था और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की चरम सीमा थी।

मिर्जा ने कहा, हुजूर नवाब को जालिमों ने कैद कर लिया है।

मीर—होगा, यह लीजिए शह।

मिर्जा—जनाब, जरा ठहरिए। इस वक्त इधर तबीयत नहीं लगती। बेचारे नवाब साहब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होंगे।

मीर—रोया ही चाहें, यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा? यह किश्त।

मिर्जा—किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दनाक हालत है।

मीर—हाँ, सो तो है ही, यह लो फिर किश्त! बस अब की किश्त में मात है। बच नहीं सकते।

मिर्जा—खुदा की कसम, आप बड़े बेदर्द हैं। इतना हादसा देखकर भी आपको दुख नहीं



होता। हाय, गरीब बाजिदअली शाह!

मीर—पहले अपने बादशाह को तो बचाइए, फिर नवाब का मातम कीजिएगा। यह किशत और मात। लगाना हाथ।

बादशाह को लिए हुए सेना सामने से निकल गई। उनके जाते ही मिर्जा ने फिर बाजी बिछा ली। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा, आइए! नवाब के मातम में एक मरसिया कह डालें। लेकिन मिर्जा की राज्यभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो गए थे।

शाम हो गई। खंडहर में चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबामीलें आ-आकर अपने घोंसलों में चिपटीं। पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे। मानो दोनों खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों। मिर्जा जी तीन बाजियाँ लगातार हार चुके थे; इस चौथी बाजी का रंग भी अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ़निश्चय कर संभलकर खेलते थे लेकिन एक न एक चाल बेढब आ पड़ती थी, जिससे बाजी खराब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और उग्र होती जाती थी। उधर मीर साहब मारे उमंग के गजलें गाते थे; चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गए हों। मियाँ सुनसुनकर झुँझलाते और हार की झेंप मिटाने के लिए उनकी दाद देते थे। ज्यों-ज्यों बाजी कमजोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकलता जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुँझलाने लगे। 'जनाब, आप चाल न बदला कीजिए। यह क्या कि चाल चले और फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना है एक बार चल दीजिए। यह आप मुहरे पर ही क्यों हाथ रखे रहते हैं। मुहरें छोड़ दीजिए। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहर छुड़ए ही नहीं। आप एक-एक चाल आध-आध घंटे में चलते हैं। इसकी सनद नहीं। जिसे एक चाल चलने में पाँच मिनट से ज्यादा लगे उसकी मात समझी जाए। फिर आपने बात बदली? चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिए।

मीर साहब का फर्जी पिटता था, बोले मैंने चाल चली ही कब थी?

मिर्जा—आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजिए-उसी घर में।

मीर—उसमें क्यों रखूँ? हाथ से मुहरा छोड़ा कब था?

मिर्जा—मुहरा आप कयामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी? फरजी पिटते देखा तो धाँधली करने लगे।

मीर—धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तकदीर से होती है। धाँधली करने से कोई नहीं जीतता।

मिर्जा—तो इस बाजी में आपकी मात हो गई।

मीर—मुझे क्यों मात होने लगी?

मिर्जा—तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए, जहाँ पहले रखा था।

मीर—वहाँ क्यों रखूँ? नहीं रखता।

मिर्जा—क्यों न रखिएगा? आपको रखना होगा।

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता, न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिर्जा बोले-किसी ने खानदान में शतरंज खेली होती तब तो

इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किए, आप शतरंज क्या खेलिएगा? रियासत और ही चीज है। जागीर मिल जाने ही से कोई रईस नहीं हो जाता।

मीर—क्या! घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे। यहाँ तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आते हैं।

मिर्जा—अजी जाइए भी, गाजीउद्दीन हैदर के यहाँ बाबर्ची का काम करते-करते उम्र गुजर गई। आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं।

मीर—क्या अपने बुजुर्गों पर कालिख लगाते हो, वे ही बाबर्ची का काम करते होंगे। यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख्वान पर खाना खाते चले आए हैं।

मिर्जा—अरे चल चरकटे, बहुत बढ़कर बातें न कर!

मीर—जबान संभालिए, वर्ना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँखें दिखाई कि उसकी आँखें निकाली। है हौसला?

मिर्जा—आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर आइए, आज दो-दो हाथ हो जाएँ, इधर या उधर।

मीर—तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन है?

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी जमाना था। सभी तलवार, पेशकब्ज, कटार वगैरह बाँधते थे। दोनों विलासी थे, पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था। बादशाह के लिए क्यों मरें? पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ने पैतरे बदले, तलवारें चमकीं, छपाछप की आवाजें आईं। दोनों जख्मी होकर गिरे, और दोनों ने वहीं तड़प-तड़पकर जाने दीं। अपने बादशाह के लिए उनकी आँखों से एक बूंद आँसू न निकला, उन्होंने शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दिए।

अँधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे मानो इन वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खंडहर की टूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें और धूल-धूसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।

## मनोवृत्ति

एक सुंदरी युवती, प्रातःकाल गांधी पार्क में बिल्लौर के बेंच पर गहरी नींद में सोई पाई जाए, यह चौंका देनेवाली बात है। सुंदरियाँ पार्कों में हवा खाने आती हैं, हँसती हैं, दौड़ती हैं, फूल-पौधों से खेलती हैं, किसी का उधर ध्यान नहीं जाता; लेकिन कोई युवती रविश के किनारे वाले बेंच पर बेखबर सोए, यह बिल्कुल गैरमामूली बात है, अपनी ओर बलपूर्वक आकर्षित करने वाली। रविश पर कितने आदमी चहलकदमी कर रहे हैं; बूढ़े भी, जवान भी। सभी एक क्षण के लिए वहाँ ठिठक जाते हैं, एक नजर वह दृश्य देखते हैं, तब चले जाते हैं। युवकवृंद रहस्य-भाव से मुस्कराते हुए, वृद्धजन चिंताभाव से सिर हिलाते हुए और युवतियाँ लज्जा से आँखें नीची किए हुए।

बसंत और हाशिम निकर और बनियान पहने नंगे पाँव दौड़ कर रहे हैं। बड़े दिन की छुट्टियों में ऑलिम्पियन रेस होने वाली है, दोनों उसी की तैयारी कर रहे हैं। दोनों इस स्थल पर पहुँचकर रुक जाते हैं और दबी आँखों से युवती को देखकर आपस में ख्याल दौड़ाने लगते हैं।

बसंब ने कहा, 'इसे और कहीं सोने की जगह न मिली?'

हाशिम ने जवाब दिया, 'कोई वेश्या है।'

'लेकिन वेश्याएँ भी तो इस तरह बेशर्मी नहीं करतीं।'

'वेश्या अगर बेशर्मा न हो तो वह वेश्या नहीं।'

'बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिनमें कुलवधू और वेश्या दोनों एक व्यवहार करती हैं। कोई वेश्या मामूली तौर पर सड़क पर सोना नहीं चाहती।'

'रूप-छवि दिखाने का नया आर्ट है।'

'आर्ट का सबसे सुंदर रूप छिपाव है, दिखाव नहीं। वेश्या इस रहस्य को खूब समझती है।'

'इसका छिपाव केवल आकर्षण बढ़ाने के लिए है।'

'हो सकता है; मगर केवल यहाँ सो जाना यह प्रमाणित नहीं करता कि यह वेश्या है। इसकी माँग में सिंदूर है।'

'वेश्या अवसर पड़ने पर सौभाग्यवती बन जाती है। रात-भर प्याले के दौर चले होंगे। काम-क्रीड़ाएँ हुई होंगी। अवसाद के कारण, ठंडक पाकर सो गई होगी।'

'मुझे तो कुलवधू-सी लगती है।'

'कुलवधू पार्क में सोने आएगी?'

'हो सकता है, घर से रूठकर आई हो।'

'चलकर पूछ ही क्यों न लें?'

‘निरे अहमक हो। बगैर किसी परिचय के आप किसी को जगा कैसे सकते हैं?’

‘अजी चलकर परिचय कर लेंगे। उलटे और एहसान जताएँगे।’

‘और जो कहीं झिड़क दे?’

‘झिड़कने की कोई बात भी हो। उससे सौजन्यता और सहृदयता में डूबी हुई बातें करेंगे। कोई युवती ऐसी बातें सुनकर चिढ़ नहीं सकती। अजी, गतयौवनाएँ तक तो रस-भरी बातें सुनकर फूल उठती हैं। यह नवयौवना है। मैंने रूप और यौवन का ऐसा सुंदर संयोग नहीं देखा था।’

‘मेरे हृदय पर तो यह रूप जीवन-पर्यंत के लिए अंकित हो गया। शायद कभी न भूल सकूँ।’

‘मैं तो फिर भी यही कहता हूँ कि यह कोई वेश्या है।’

‘रूप की देवी वेश्या भी हो, तो उपास्य है।’

‘यहीं खड़े-खड़े कवियों की सी बातें करोगे, जरा वहाँ तक चलते क्यों नहीं? तुम केवल खड़े रहना, पाश तो मैं डालूँगा।’

‘कोई कुलवधू है।’

‘कुलवधू पार्क में जाकर सोए, तो इसका इसके सिवा कोई अर्थ नहीं कि वह आकर्षित करना चाहती है और यह वेश्या मनोवृत्ति की है।’

‘आज की की युवतियाँ युवकों से आँखें नहीं चुरातीं।’

‘हाँ, लेकिन है कुलवधू, कुलवधू से किसी तरह की बातचीत करना मैं बेहूदगी समझता हूँ।’

‘तो चलो, फिर दौड़ लगाएँ।’

‘लेकिन दिल में तो वह मूर्ति दौड़ रही है।’

‘तो आओ बैठें। जब वह उठकर जाने लगे, तो उसके पीछे चलें। मैं कहता हूँ, वेश्या है।’

‘और मैं कहता हूँ, कुलवधू है।’

‘तो दस-दस की बाजी रही।’

दो वृद्ध पुरुष धीरे-धीरे जमीन की ओर ताकते आ रहे हैं, मानो जवानी ढूँढ़ रहे हों। एक की कमर झुकी, बाल काले, शरीर स्थूल, दूसरे के बाल पके हुए, पर कमर सीधी, इकहरा शरीर। दोनों के दाँत टूटे, पर नकली लगाए, दोनों की आँखों पर ऐनक। मोटे महाशय वकील हैं, छरहरे महोदय डाक्टर।

वकील—देखी यह बीसवीं सदी की करामात!

डाक्टर—जी हाँ, देखा, हिंदुस्तान दुनिया से अलग तो नहीं है।

‘लेकिन आप इसे शिष्टता तो नहीं कह सकते?’

‘शिष्टता की दुहाई देने का अब समय नहीं।’

‘है किसी भले घर की लड़की।’

‘वेश्या है साहब, आप इतना भी नहीं समझते?’

‘वेश्या इतनी फूहड़ नहीं होती।’

‘और भले घर की लड़कियाँ फूहड़ होती हैं?’

‘नई आजादी है, नया नशा है।’

‘हम लोगों की तो बुरी-भली कट गई। जिनके सिर आएगी झेलेंगे।’

जिंदगी जहन्नूम से बदतर हो जाएगी।’

‘अफसोस, जवानी रुखसत हो गई।’

‘मगर आँख तो नहीं रुखसत हो गई, वह दिल तो नहीं रुखसत हो गया।’

‘बस आँख से देखा करो, दिल जलाया करो।’

‘मेरा तो फिर जवान होने को जी चाहता है। सच पूछो तो आजकल के जीवन में ही जिंदगी की बहार है। हमारे वक्तों में तो कहीं कोई सूरत ही नजर न आती थी। आज तो जिधर जाओ, हुस्न ही हुस्न के जलवे हैं।’

‘सुना, युवतियों को दुनिया में जिस चीज से सबसे ज्यादा नफरत है, वह बूढ़े मर्द हैं।’

‘मैं इसका कायल नहीं। पुरुष का जौहर उसकी जवानी नहीं, उसकी शक्ति-संपन्नता होता है। कितने ही बूढ़े जवानों से ज्यादा कड़ियल होते हैं। मुझे तो आएदिन इसके तजुर्बे होते हैं। मैं ही अपने को किसी जवान से कम नहीं समझता।’

‘यह सब सही है, पर बूढ़ों का दिल कमजोर होता जाता है। अगर यह बात न होती तो इस रमणी को इस तरह देखकर हम लोग यों न चले आते। मैं तो आँख-भर देख भी न सका। डर लग रहा था कि कहीं उसकी आँखें खुल जाएँ और वह मुझे ताकते देख ले तो दिल में क्या समझे!’

‘खुश होती कि बूढ़े पर भी उसका जादू चल गया।’

‘अजी रहने भी दो।’

‘आप कुछ दिनों ‘ओकासा’ का सेवन कीजिए।’

‘चंद्रोदय खाकर देख चुका। सब लूटने की बातें हैं।’

‘मंकी ग्लैंड लगवा लीजिए न।’

‘आप इस युवती से मेरी बात पक्की करा दें। मैं तैयार हूँ।’

‘हाँ, यह मेरा जिम्मा; मगर भाई, हिस्सा भी रहेगा। अर्थात् यह कि कभी-कभी मैं भी आपके घर झाँककर अपनी आँखें ठंडी कर लिया करूँगा।’

‘अगर आप इस इरादे से आएँ तो आपका दुश्मन हो जाऊँ।’

‘ओ हो, आप तो मंकी ग्लैंड का नाम सुनते ही जवान हो गए।’

‘मैं तो समझता हूँ, यह भी डाक्टरों ने लूटने का एक लटका निकाला है। सच!’

‘अरे साहब, इस रमणी के स्पर्श में जवानी है, आप हैं किस फेर में। इसके एक-एक अंग में, एक-एक चितवन में, एक-एक मुस्कान में, एक-एक लिबास में जवानी भरी हुई है। न सौ मंकी ग्लैंड न एक रमणी का बाहुपाश।’

‘अच्छा, कदम बढ़ाइए, मुक्किल आकर बैठे होंगे।’

‘यह सूरत याद रहेगी।’

‘फिर आपने याद दिला दी।’

‘वह इस तरह सोई है इसलिए कि लोग उसके रूप को, उसके अंग-विन्यास को, उसके बिखरे हुए केशों को, उसकी खुली हुई गर्दन को देखें और अपनी छाती पीटें। इस तरह चले जाना उसके साथ अन्याय है। वह बुला रही है और आप भागे जा रहे हैं।’

‘हम जिस तरह दिल से प्रेम कर सकते हैं, जवान कभी कर सकता है?’

‘बिलकुल ठीक। मुझे तो ऐसी औरतों से साबिका पड़ चुका है, जो रसिक बूढ़ों को खोजा करती हैं। जवान तो छिछोरे, उच्छृंखल, अस्थिर और गर्वीले होते हैं। वे प्रेम के बदले में कुछ चाहते हैं। यहाँ निःस्वार्थ भाव से आत्मसमर्पण करते हैं।’

‘आपकी बातों से दिल में गुदगुदी हो गई।’

‘मगर एक बात याद रखिए, कहीं उसका जवान प्रेमी मिल गया तो?’

‘तो मिला करे, यहाँ ऐसों से नहीं डरते।’

‘आपकी शादी की कुछ बातचीत थी तो?’

‘हाँ, थी; मगर अपने ही लड़के जब दुश्मनी पर कमर बाँधें, तो क्या हो? मेरा लड़का यशवंत तो मुझे बंदूक दिखाने लगा। यह जमाने की खूबी है।’

अक्टूबर की धूप तेज हो चली थी। दोनों मित्र निकल गए।

दो देवियाँ, एक वृद्धा, दूसरी नवयौवना पार्क के फाटक पर मोटर से उतरीं और पार्क में हवा खाने आईं। उनकी निगाह भी उस नींद की मारी युवती पर पड़ी।

वृद्धा ने कहा, ‘बड़ी बेशर्म है।’

नवयौवना ने तिरस्कार भाव से उसकी ओर देखकर कहा, ‘ठाठ तो बड़े घर की देवियों के हैं।’

‘बस ठाठ ही देख लो। इसी से मर्द कहते हैं, स्त्रियों को आजादी न मिलनी चाहिए।’

‘मुझे तो कोई वेश्या मालूम होती है।’

‘वेश्या ही सही, पर इसे इतनी बेशर्मी करके स्त्री-समाज को लज्जित करने का क्या अधिकार है।’

‘कैसे मजे से सो रही है, मानो अपने घर में है।’

‘बेहयाई है। मैं परदा नहीं चाहती, पुरुषों की गुलामी नहीं चाहती, लेकिन औरतों में जो गौरवशीलता और सलज्जता है, उसे नहीं छोड़ना चाहती। मैं किसी युवती को सड़क पर सिगरेट पीते देखती हूँ, तो मेरे बदन में आग लग जाती है। उसी तरह आधी छाती का जम्फर भी मुझे नहीं सोहाता। क्या अपने धर्म की लाज छोड़ देने ही से साबित होगा कि हम बहुत फार्वर्ड हैं? पुरुष अपनी छाती या पीठ खोले तो नहीं घूमते?’

‘इसी बात पर बाईजी, जब मैं आपको आड़े हाथों लेती हूँ, तो आप बिगड़ने लगती हैं। पुरुष स्वाधीन है। वह दिल में समझता है कि मैं स्वाधीन हूँ। वह स्वाधीनता का स्वाँग नहीं भरता। स्त्री अपने दिल में समझती रहती है कि वही स्वाधीन नहीं है, इसलिए वह अपनी स्वाधीनता का ढोंग करती है जो बलवान है, वे अकड़ते नहीं। जो दुर्बल हैं, वही अकड़ दिखाते हैं। क्या आप उन्हें अपने आँसू पोंछने के लिए इतना अधिकार भी नहीं देना चाहती?’

‘मैं तो कहती हूँ, स्त्री अपने को छिपाकर पुरुष को जितना नचा सकती है, अपने को खोलकर नहीं नचा सकती।’

‘स्त्री ही पुरुष के आकर्षण की फिक्र क्यों करे? पुरुष क्यों स्त्री से पर्दा नहीं करता?’

‘आज मुँह न खुलवाओ मीनू। इस छोकरी को जगाकर कह दो, जाकर घर में सोए। इतने आदमी आ-जा रहे हैं और यह निर्लज्जा टाँग फैलाए पड़ी है। यहाँ इसे नींद कैसे आ गई?’

‘रात कितनी गर्मी थी बाई जी! ठंडक पाकर बेचारी की आँख लग गई है।’

‘रात-भर यहीं रही है, कुछ-कुछ बदती हूँ।’

मीनू युवती के पास आकर उसका हाथ पकड़कर हिलाती है, ‘यहाँ क्यों सो रही हो देवीजी? इतना दिन चढ़ आया, उठकर घर जाओ।’

युवती आँखें खोल देती है, ‘ओह, इतना दिन चढ़ आया? क्या मैं सो गई थी? मेरे सिर में चक्कर आ जाया करता है। मैंने समझा शायद हवा से कुछ लाभ हो। यहाँ आई; पर ऐसा चक्कर आया कि इस बेंच पर बैठ गई, फिर मुझे होश न रहा। अब भी मैं खड़ी नहीं हो सकती। मालूम होता है, गिर पड़ूँगी। बहुत दवा की, पर कोई फायदा नहीं होता। आप डाक्टर श्यामनाथ को जानती होंगी, वह मेरे ससुर हैं।’

युवती ने आश्चर्य से कहा, ‘अच्छा! वह तो अभी इधर ही से गए हैं।’

‘सच! लेकिन मुझे पहचान कैसे सकते हैं? अभी मेरा गौना नहीं हुआ है।’

‘तो क्या आप उनके लड़के बसंतलाल की धर्मपत्नी हैं?’

युवती ने शर्म से सिर झुकाकर स्वीकार किया। मीनू ने हँसकर कहा, ‘बसंतपाल तो अभी इधर से गए हैं। मेरा उनसे यूनिवर्सिटी का परिचय है।’

‘अच्छा! लेकिन उन्होंने मुझे देखा कहाँ है?’

‘तो मैं दौड़कर डाक्टर साहब को खबर दे दूँ?’

‘जी नहीं, मैं थोड़ी देर में बिल्कुल अच्छी हो जाऊँगी।’

‘बसंतपाल भी वह खड़ा है, उसे बुला दूँ?’

‘जी नहीं, किसी को न बुलाइए।’

‘तो चलो, अपनी मोटर पर तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा दूँ।’

‘आपकी बड़ी कृपा होगी।’

‘किस मुहल्ले में?’

‘बेगमगंज, मिस्टर जयरामदास के घर।’

‘मैं आज ही मिस्टर बसंतपाल से कहूँगी।’

‘मैं क्या जानती थी, वह इस पार्क में आते हैं।’

‘मगर कोई आदमी तो साथ ले लिया होता?’

‘किसलिए, कोई जरूरत न थी।’

## पूस की रात

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा—सहना आया है, लाओ, जो रूपए रखे हैं, उसे दे दूँ। किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिर कर बोली—तीन ही तो रूपए हैं, दे दोगे तो कंबल कहाँ से आवेगा? माघ-पूस की रात हार में कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर रूपए दे देंगे। अभी नहीं।

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कंबल के बिना हार में रात को वह किसी तरह नहीं सो सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमावेगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों में मरेंगे, बला तो सिर से टल जाएगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरकम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठा सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला—ला दे दे, गला तो छूटे। कंबल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और आँखें तरेरती हुई बोली—कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूँ कौन-सा उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कंबल? न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने में ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आए। मैं रूपए न दूँगी-न दूँगी।

हल्कू उदास होकर बोला—तो क्या गाली खाऊँ?

मुन्नी ने तड़पकर कहा—गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गई। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जंतु की भाँति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रूपए निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिए। फिर बोली—तुम छोड़ दो, अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है। मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस।

हल्कू ने रूपए लिए और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-काटकर तीन रूपए कंबल के लिए जमा किए थे। वे आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।



पूस की अँधेरी रात। आकाश पर तारे ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा काँप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुँह डाले सर्दी से कूँ-कूँ कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियों को गर्दन में चिपकाते हुए कहा—क्यों जबरा, जाड़ा लगता है? कहता तो था, घर में पुआल पर लेटे रहो। यहाँ क्या लेने आए थे? अब खाओ ठंड, मैं क्या करूँ? जानते थे, मैं यहाँ हलवा-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े-दौड़े आगे-आगे चले आए। अब रोओ नानी के नाम को।

जबरा ने पड़े-पड़े दुम हिलाई और अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ, एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान-बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूँ-कूँ से नींद नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठंडी पीठ सहलाते हुए कहा—कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह रांड पछुआ न जाने कहाँ से बरफ लिए आ रही है। उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह रात तो कटे। आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है। और एक-एक भाग्यवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाए तो गर्मी से घबड़ाकर भागे। मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ, कंबल। मजाल है, जाड़े का गुजर हो जाए। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटेंगे।’

हल्कू उठा और गड्डे में से जरा-सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा—पिएगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है, हाँ, जरा मन बहल जाता है।

जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हल्कू आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

जबरा ने अगले पंजे उसकी घुटनियों पर रख दिए और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म साँस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ भी हो, अबकी सो जाऊँगा। पर एक ही क्षण से उसके हृदय में कंपन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाए हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से न जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर उसे अपनी गोद में चिपटाए हुए वह ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था, कि स्वर्ग यहाँ है, और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल

दिए थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोंकों को तुच्छ समझती थी। वह झटपट उठा और छतरी के बाहर आकर भूँकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार चुमकारकर बुलाया; पर वह उसके पास न आया। हार के चारों तरफ दौड़-दौड़कर भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता तो तुरंत ही फिर दौड़ता। कर्तव्य हृदय में अरमान की भाँति उछल रहा था।

एक घंटा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा में धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया, फिर भी ठंड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त कि जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है। सप्तर्षि अभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जाएँगे, तब कहीं सवेरा होगा। अभी पहर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग था। पतझड़ शुरू हो गई थी। बाग में पत्तियों का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देखे, तो समझे कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो बैठे नहीं रहा जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिए बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे आते देखा, तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा—अब तो नहीं रहा जाता जबरू! चलो, बगीचे में पत्तियाँ बटोरकर तापें। टाँटे हो जाएँगे, तब फिर आकर सोएँगे। अभी तो रात बहुत है।

जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे-आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में खूब अँधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदें नीचे टप-टप टपक रही थीं।

एकाएक एक झोंका मेहंदी के फूलों की खुशबू लिए हुए आया।

हल्कू ने कहा—कैसी अच्छी महक आई जबरू! तुम्हारी नाक में भी कुछ सुगंध आ रही है?

जबरा को कहीं जमीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गई थी। उसे निचोड़ रहा था।

हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों का एक ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पाँव गले जाते थे। और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छूकर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो उस अथाह अंधकार को अपने सिरो पर सँभाले हुए हों। अंधकार के उस अनंत सागर में यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उतारकर बगल में दबा ली और दोनों पाँव फैला दिए; मानों ठंड को ललकार रहा हो, तेरे जी में जो आए सो कर। ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा—क्यों जबरू, अब ठंड नहीं लग रही है?

जबरा ने कूँ-कू करके मानो कहा—अब क्या ठंड लगती ही रहेगी।

‘पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं तो इतनी ठंड क्यों खाते।’

जबरा ने पूँछ हिलाई।

‘अच्छा आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें। देखें, कौन निकल जाता है। अगर जल गए बच्चा, तो मैं दवा करूँगा।’

जबरा ने इस अग्निराशि की ओर कातर नेत्रों से देखा।

‘मुन्नी से कल न कह देना, नहीं तो लड़ाई करेगी।’

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया। पैरों में जरा लपटें लगीं, पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा—चलो-चलो इसकी सही नहीं। ऊपर से कूदकर आओ। वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

पत्तियाँ जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अँधेरा छाया था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर जाग उठती थी, पर एक क्षण में फिर आँखें बंद कर लेती थी।

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गर्मी आ गई थी। ज्यों-ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाए लेता था।

जबरा जोर से भूँककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुंड उसके खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुंड था। उनके कूदने-दौड़ने की आवाजें साफ कान में आ रही थीं। फिर ऐसा मालूम हुआ कि वह खेत में चर रही हैं। उनके चरने की आवाज चर-चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा—नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ? अब तो कुछ नहीं सुनाई देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ।

उसने जोर से आवाज लगाई—जबरा, जबरा!

जबरा भूँकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत में चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ बैठा था। इस जाड़े-पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना, असूझ जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर में आवाज लगाई—होलि-होलि! होलि!!

जबरा फिर भूँक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फसल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किए डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला, एकाएक हवा का ऐसा ठंडा, चुभने वाला, बिच्छू के डंक का सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठंडी देह को गर्माने लगा।

जबरा अपना गला फाड़े डालता था, नीलगायें खेत का सफाया किए डालती थीं और हल्कू गर्म राख के पास शांत बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।

वह उसी राख के पास गर्म जमीन पर चादर ओढ़कर सो गया।

सवेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ धूप फैल गई थी। और मुन्नी कह रही थी—क्या आज सोते ही रहोगे? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया।

हल्कू ने उठकर कहा—क्या तू खेत से होकर आ रही है?

मुन्नी बोली—हाँ, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला ऐसा भी कोई सोता है। तुम्हारे यहाँ मड़ैया डालने से क्या हुआ?

हल्कू ने बहाना किया—मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दरद हुआ कि मैं ही जानता हूँ।

दोनों फिर खेती की डाँड़ पर आए। देखा, सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है और जबरा मड़ैया के नीचे चित्त लेटा है, मानो प्राण ही न हों।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छाई थी। पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा—अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा—रात की ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।

## लेखक

प्रातःकाल महाशय प्रवीण ने बीस दफा उबाली हुई चाय का प्याला तैयार किया और बिना शक्कर और दूध के पी गए। यही उनका नाश्ता था। महीनों से मीठी, दूधिया चाय न मिली थी। दूध और शक्कर उनके लिए जीवन के आवश्यक पदार्थों में न थे। घर में गए जरूर कि पत्नी को जगाकर पैसे माँगें, पर उसे फटे-मैले लिहाफ में निद्रामग्न देखकर जगाने की इच्छा न हुई। सोचा, शायद मारे सर्दी के बेचारी को रात-भर नींद न आई होगी, इस वक्त जाकर आँख लगी है। कच्ची नींद जगा देना उचित न था। चुपके से चले आए।

चाय पीकर उन्होंने कलम-दवात सँभाली और वह किताब लिखने में तल्लीन हो गए, जो उनके विचार में इस शताब्दी की सबसे बड़ी रचना होगी, जिनका प्रकाशन उन्हें गुमनामी से निकालकर ख्याति और समृद्धि के स्वर्ग पर पहुँचा देगा।

आधा घंटे बाद पत्नी आँखें मलती हुई आकर बोली, 'क्या तुम चाय पी चुके? '

प्रवीण ने सहास्य मुख से कहा, 'हाँ, पी चुका। बहुत अच्छी बनी थी।'

'पर दूध और शक्कर कहाँ से लाए? '

'दूध और शक्कर तो कई दिनों से नहीं मिलता। मुझे आजकल सादी चाय ज्यादा स्वादिष्ट लगती है। दूध और शक्कर मिलाने से उसका स्वाद बिगड़ जाता है। डॉक्टरों की भी यही राय है कि चाय हमेशा सादी पीनी चाहिए। यूरोप में तो दूध का बिलकुल रिवाज नहीं है। यह तो हमारे यहाँ के मधुर-प्रिय रईसों की ईजाद है।'

'जाने तुम्हें फीकी चाय कैसे अच्छी लगती है। मुझे जगा क्यों न लिया? पैसे तो रखे थे।'

महाशय प्रवीण फिर लिखने लगे। जवानी ही में उन्हें यह रोग लग गया था और आज बीस साल से वह उसे पाले हुए थे। इस रोग में देह घुल गई, स्वास्थ्य घुल गया और चालीस की अवस्था में बुढ़ापे ने आ घेरा, पर यह रोग असाध्य था। सूर्योदय से आधी रात तक यह साहित्य का उपासक अंतर्जगत् में डूबा हुआ, समस्त संसार से मुँह मोड़े, हृदय के पुष्प और नैवेद्य चढ़ाता रहता था। पर भारत में सरस्वती की उपासना लक्ष्मी की अभक्ति है। मन तो एक ही था। दोनों देवियों को एक साथ कैसे प्रसन्न करता, दोनों के वरदान का पात्र क्योंकि बनता? और लक्ष्मी की यह अकृपा केवल धनाभाव के रूप में न प्रकट होती थी, उसकी सबसे निर्दय क्रीड़ा यह थी कि पत्रों के संपादक और पुस्तकों के प्रकाशक उदारतापूर्वक सहृदयता का दान भी न देते थे। कदाचित् सारी दुनिया ने उसके विरुद्ध कोई षड्यंत्र-सा रच डाला था। यहाँ तक कि इस निरंतर अभाव ने उसमें आत्मविश्वास को जैसे कुचल दिया था। कदाचित् अब उसे यह ज्ञात होने लगा था कि उसकी रचनाओं में कोई सार, कोई प्रतिभा नहीं है और यह भावना अत्यंत हृदय-विदारक थी। यह दुर्लभ मानव-जीवन यों ही नष्ट हो गया। यह तस्कीन भी नहीं कि संसार ने चाहे उसका सम्मान न किया हो, पर उसकी जीवनकृति

इतनी तुच्छ नहीं। जीवन की आवश्यकताएँ घटते-घटते संन्यास की सीमा को भी पार कर चुकी थीं। अगर कोई संतोष था, तो यह कि उनकी जीवन-सहचरी त्याग और तप में उनसे भी दो कदम आगे थी। सुमित्रा इस दशा में भी प्रसन्न थी। प्रवीणजी को दुनिया से शिकायत हो, पर सुमित्रा जैसे गेंद में भरी हुई वायु की भाँति उन्हें बाहर की ठोकरों से बचाती रहती थी। अपने भाग्य का रोना तो दूर की बात थी, इस देवी ने कभी माथे पर बल भी न आने दिया।

सुमित्रा ने चाय का प्याला समेटते हुए कहा, 'तो जाकर घंटा-आध घंटा कहीं घूम-फिर क्यों नहीं आते? जब मालूम हो गया कि प्राण देकर काम करने से भी कोई नतीजा नहीं, तो व्यर्थ क्यों सिर खपाते हो? '

प्रवीण ने बिना मस्तक उठाए, कागज पर कलम चलाते हुए कहा, 'लिखने में कम-से-कम यह संतोष तो होता है कि कुछ कर रहा हूँ। सैर करने में तो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि समय का नाश कर रहा हूँ।'

'ये इतने पढ़े-खिले आदमी नित्यप्रति हवा खाने जाते हैं, तो अपने समय का नाश करते हैं? '

'मगर इनमें अधिकांश वही लोग हैं, जिनके सैर करने से उनकी आमदनी में बिलकुल कमी नहीं होती। अधिकांश तो सरकारी नौकर हैं, जिनको मासिक वेतन मिलता है, या ऐसे पेशों के लोग हैं, जिनका लोग आदर करते हैं। मैं तो मिल का मजूर हूँ। तुमने किसी मजूर को हवा खाते देखा है? जिन्हें भोजन की कमी नहीं, उन्हीं को हवा खाने की भी जरूरत है। जिनको रोटियों के लाले हैं, वे हवा खाने नहीं जाते। फिर स्वास्थ्य और जीवन-वृद्धि की जरूरत उन लोगों को है, जिनके जीवन में आनंद और स्वाद है। मेरे लिए तो जीवन भार है। इस भार को सिर पर कुछ दिन और बनाए रहने की अभिलाषा मुझे नहीं है।

सुमित्रा निराशा में डूबे हुए शब्द सुनकर आँखों में आँसू भरे अंदर चली गई। उसका दिल कहता था, इस तपस्वी की कीर्ति-कौमुदी एक दिन अवश्य फैलेगी, चाहे लक्ष्मी की अकृपा बनी रहे। किंतु प्रवीण महोदय अब निराशा की उस सीमा तक पहुँच चुके थे, जहाँ से प्रतिकूल दिशा में उदय होने वाली आशामय उषा की लाली भी नहीं दिखाई देती।

एक रईस के यहाँ कोई उत्सव है। उसने महाशय प्रवीण को भी निमंत्रित किया। आज उनका मन आनंद के घोड़े पर बैठा हुआ नाच रहा है। सारे दिन वह इसी कल्पना में मग्न रहे — राजा साहब किन शब्दों में उनका स्वागत करेंगे और वह किन शब्दों में उनको धन्यवाद देंगे, किन प्रसंगों पर वार्तालाप होगा और किन महानुभावों से उनका परिचय होगा। सारे दिन वह इन्हीं कल्पनाओं का आनंद उठाते रहे। इस अवसर के लिये उन्होंने एक कविता भी रची, जिसमें उन्होंने जीवन की एक उद्यान से तुलना की थी। अपनी सारी धारणाओं की उन्होंने आज उपेक्षा कर दी, क्योंकि रईसों के मनोभावों को वह अघात न पहुँचा सकते थे।

दोपहर से ही उन्होंने तैयारियाँ शुरू कीं। हजामत बनाई, साबुन से नहाया, सिर में तेल डाला। मुश्किल कपड़ों की थी। मुद्दत गुजरी, जब उन्होंने अचकन बनवाई थी। उसकी दशा भी उन्हीं की दशा जैसी जीर्ण हो चुकी थी। जैसे जरा-सी सर्दी या गर्मी से उन्हें जुकाम या

सिरदर्द हो जाता था, उसी तरह वह अचकन भी नाजुक-मिजाज थी। उसे निकाला तो झाड़-पोंछकर रखा।

सुमित्रा ने कहा, 'तुमने व्यर्थ ही निमंत्रण स्वीकार किया। लिख देते, मेरी तबीयत अच्छी नहीं है। इन फटेहालों जाना और बुरा है।'

प्रवीण ने दार्शनिक गंभीरता से कहा, 'जिन्हें ईश्वर ने हृदय और परख दी है, वे आदमियों की पोशाक नहीं देखते, उनके गुण और चरित्र देखते हैं। आखिर कुछ बात तो है कि राजा साहब ने मुझे निमंत्रित किया। मैं कोई ओहदेदार नहीं, जमींदार नहीं, जागीरदार नहीं, ठेकेदार नहीं, केवल एक साधारण लेखक हूँ। लेखक का मूल्य उसकी रचनाएँ होती हैं। इस एतबार से मुझे किसी भी लेखक से लज्जित होने का कारण नहीं है।'

सुमित्रा उनकी सरलता पर दया करके बोली, 'तुम कल्पनाओं के संसार में रहते-रहते प्रत्यक्ष संसार से अलग हो गए हो। मैं कहती हूँ राजा साहब के यहाँ लोगों की निगाह सबसे ज्यादा कपड़ों पर ही पड़ेगी। सरलता जरूर अच्छी चीज है, पर इसका अर्थ यह तो नहीं कि आदमी फूहड़ बन जाए!'

प्रवीण को इस कथन में कुछ सार जान पड़ा। विद्वज्जनों की भाँति उन्हें भी अपनी भूल को स्वीकार करने में कुछ विलंब न होता था। बोले, 'मैं समझता हूँ, दीपक जल जाने के बाद जाऊँ।'

'मैं तो कहती हूँ, जाओ ही क्यों?'

'अब तुम्हें कैसे समझाऊँ, प्रत्येक प्राणी के मन में आदर और सम्मान की एक क्षुधा होती है। तुम पूछोगी, यह क्षुधा क्यों होती है? इसलिए कि यह हमारे आत्मविकास की एक मंजिल है। हम उस महान सत्ता के सूक्ष्मांश हैं, जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। अंश में पूर्व के गुणों का होना लाजिमी है। इसलिए कीर्ति और सम्मान आत्मोन्नति और ज्ञान की ओर हमारी स्वाभाविक रुचि है। मैं इस लालसा को बुरा नहीं समझता।'

सुमित्रा ने गला छुड़ाने के लिए कहा, 'अच्छा भाई जाओ। मैं तुमसे बहस नहीं करती लेकिन कल के लिए कोई व्यवस्था करते आना, क्योंकि मेरे पास केवल एक आना और रह गया है। जिनसे उधार मिल सकता था, उनसे ले चुकी और जिनसे लिया, उसे देने की नौबत नहीं आई। मुझे अब और कोई उपाय नहीं सूझता।'

प्रवीण ने एक क्षण बाद कहा, 'दो-एक पत्रिकाओं से मेरे लेखों के रूपए आने वाले हैं। शायद कल तक आ जाएँ और अगर कल उपवास ही करना पड़े तो क्या चिंता? हमारा धर्म है काम करना। हम काम करते हैं और तन-मन से करते हैं। अगर इस पर भी हमें फाका करना पड़े, तो मेरा दोष नहीं। मर ही तो जाऊँगा हमारे जैसे लाखों आदमी रोज मरते हैं। संसार का काम ज्यों-का-त्यों चलता रहता है। फिर इसका क्या गम कि हम भूखों मर जाएँगे। मौत डरने की वस्तु नहीं। मैं तो कबीरपंथियों का कायल हूँ, जो अर्थी गाते-बजाते ले जाते हैं। मैं इससे नहीं डरता। तुम्हीं कहो, मैं जो कुछ करता हूँ, इससे अधिक और कुछ मेरी शक्ति के बाहर है या नहीं। सारी दुनिया मीठी नींद सोती है और मैं कलम लिए बैठा रहता हूँ। लोग हँसी-दिल्लगी, आमोद-प्रमोद करते रहते हैं; मेरे लिए वह सब हराम है। यहाँ तक कि महीनों

से हँसने की नौबत नहीं आई। होली के दिन भी मैंने तातील नहीं मनाई। बीमार भी होता हूँ, तो लिखने की फिक्र सिर पर सवार रहती है। सोचो, तुम बीमार थीं और मैं वैद्य के यहाँ जाने के लिए समय न पाता था। अगर दुनिया नहीं कदर करती, न करे। उसका प्रकाश फैलता है या उसके सामने कोई ओट है, उसे इससे प्रयोजन नहीं।'

'मेरा भी ऐसा कौन मित्र, परिचित या संबंधी है, जिसका मैं आभारी नहीं? यहाँ तक कि अब घर से निकलते शर्म आती है। संतोष इतना ही अच्छा है कि लोग मुझे बदनीयत नहीं समझते। मेरी कुछ अधिक मदद न कर सकें, पर उन्हें मुझसे सहानुभूति अवश्य है। मेरी खुशी के लिए इतना ही काफी है कि आज वह अवसर तो आया है कि एक रईस ने मेरा सम्मान किया!'

फिर सहसा उन पर एक नशा-सा छा गया। गर्व से बोले, 'नहीं, मैं अब रात को न जाऊँगा। मेरी गरीबी अब रूसवाई की हद तक पहुँच चुकी है। उस पर परदा डालना व्यर्थ है। मैं इसी वक्त जाऊँगा जिसे रईस और राजे आमंत्रित करें, वह कोई ऐसा-वैसा आदमी नहीं हो सकता। राजा साहब साधारण रईस नहीं है। वह इस नगर के ही नहीं, भारत के विख्यात रईसों में हैं। अगर अब भी कोई नीचा समझे, तो वह खुद नीचा है।'

संध्या का समय है। प्रवीण जी अपनी फटी-पुरानी अचकन और सड़े हुए जूते और बेढंगी-सी टोपी पहने घर से निकले। खामखाह, बाँगड़ उचक्के-से मालूम होते थे। डीलडौल और चेहरे-मुहरे के आदमी होते, तो इस ठाठ में भी एक शान होती। स्थूलता स्वयं रौब डालने वाली वस्तु है। पर साहित्य-सेवा और स्थूलता में विरोध है। अगर कोई साहित्य-सेवी मोटा-ताजा, डबल आदमी है, तो समझ लो, उसमें माधुर्य नहीं, लोच नहीं, हृदय नहीं। दीपक का काम है, जलना। दीपक वही लबालब भरा होगा, जो जला न हो। फिर भी आप अकड़े जाते हैं। एक-एक अंग से गर्व टपक रहा है।

यों घर से निकलकर वह दुकानों से आँखें चुराते, गलियों से निकले जाते थे, पर आज वह गरदन उठाए, उनके सामने से जा रहे हैं। आज वह उनके तकाजों का दंदाशिकन जवाब देने को तैयार हैं। पर संध्या का समय है, हर एक दुकान पर ग्राहक बैठे हुए हैं। कोई उनकी तरफ नहीं देखता। जिस रकम को वह अपनी हीनावस्था में दुर्विचार समझते थे, वह दुकानदारों की निगाह में इतनी जोखिम न थी कि जाने-पहचाने आदमी को सरे बाजार टोकते, विशेषकर जब वह आज किसी से मिलने जाते हुए मालूम होते थे।

प्रवीण ने एक बार सारे बाजार का चक्कर लगाया, पर जी न भरा। तब दूसरा चक्कर लगाया, पर वह भी निष्फल। तब वह खुद हाफिज समद की दुकान पर जाकर खड़े हो गए। हाफिजजी बिसाते का कारोबार करते थे। बहुत दिन हुए—प्रवीण इस दुकान से एक छतरी ले गए थे और अभी तक दाम न चुका सके थे। प्रवीण को देखकर बोले, 'महाशय जी, अभी तक छतरी के दाम नहीं मिले। ऐसे सौ-पचास ग्राहक मिल जाएँ, तो दिवाला ही हो जाए। अब तो बहुत दिन हुए।'

प्रवीण की बाँछें खिल गईं। दिली मुराद पूरी हुई। बोले, 'मैं भूला नहीं हूँ हाफिज जी, इन



दिनों काम इतना ज्यादा था कि घर से निकलना मुश्किल था। रूपए तो नहीं हाथ आते, पर आपकी दुआ से कदरशिनासों की कमी नहीं। दो-चार आदमी घेरे ही रहते हैं। इस वक्त राजा साहब-अजी वही जो नुक्कड़ वाले बँगले में रहते हैं, उन्हीं के यहाँ जा रहा हूँ। दावत है। रोज ऐसा कोई-न-कोई मौका आता ही रहता है।’

हाफिज समद प्रभावित होकर बोला, ‘अच्छा! आप राजा साहब के यहाँ तशरीफ ले जा रहे हैं! ठीक है, आप जैसे बाकमालों की कदर रईस ही कर सकते हैं, और कौन करेगा? सुभानअल्लाह! आप इस जमाने में यकता हैं, अगर कोई मौका हाथ आ जाए, तो गरीब को न भूल जाइएगा। राजा साहब की अगर इधर निगाह हो जाए, तो फिर क्या पूछना! एक पूरा बिसाता तो उन्हीं के लिए चाहिए। ढाई-तीन लाख सालाना आमदनी है।’

प्रवीण को ढाई-तीन लाख कुछ तुच्छ जान पड़े। जबानी जमा-खर्च है, तो दस बीस लाख कहने में क्या हानि? बोले, ‘ढाई-तीन लाख! आप तो उन्हें गालियाँ देते हैं। उनकी आमदनी दस लाख से कम नहीं। एक साहब का अंदाज तो बीस लाख का है। इलाका है, मकानात हैं। दुकानें हैं, ठीका है, अमानती रूपए हैं और फिर सबसे बड़ी सरकार बहादुर की निगाह है।’

हाफिज ने बड़ी नम्रता से कहा, ‘यह दुकान आप ही की है जनाब, बस इतनी ही अरज है। अरे मुरादी, जरा दो पैसे के अच्छे-से पान तो बनवा ला। आपके लिए। आइए, दो मिनट बैठिए। कोई चीज पसंद हो तो दिखाऊँ। आपसे तो घर का वास्ता है।’

प्रवीण ने पान खाते हुए कहा, ‘इस वक्त तो मुआफ करिए। वहाँ देर होगी। फिर कभी हाजिर हूँगा।’

यहाँ से उठकर वह एक कपड़े वाले की दुकान के सामने रुके। मनोहरदास नाम था। इन्हें खड़े देखकर आँखें उठाईं। बेचारा इनके नाम को रो बैठा था। समझ लिया, शायद इस शहर में हैं ही नहीं। समझा, रूपए देने आए हैं। बोला, ‘भाई प्रवीणजी, आपने तो बहुत दिनों से दर्शन ही नहीं दिए। रुक्का कई बार भेजा, मगर प्यादे को आपके घर का पता न मिला। मुनीमजी, जरा देखो तो आपके नाम क्या है?’

प्रवीण के प्राण तकाजों से सूख जाते थे; पर आज वह इस तरह खड़े थे, मानो उन्होंने कवच धारण कर लिया है, जिस पर किसी अस्त्र का आघात नहीं हो सकता। बोले, ‘जरा इन राजा साहब के यहाँ से लौट आऊँ तो निश्चित होकर बैठूँ। इस समय जल्दी में हूँ।’ राजा साहब पर मनोहरदास के कई हजार रूपए आते थे। फिर भी उनका दामन न छोड़ता था। एक के तीन वसूल करता। उसने प्रवीणजी को ऊँची श्रेणी में रखा, जिसका पेशा रईसों को लूटना है। बोला, ‘पान तो खाते जाइए महाशय! राजा साहब एक दिन के हैं। हम तो बारहों मास के हैं भाई साहब! कुछ कपड़े दरकार हों तो ले जाइए। अब तो होली आ रही है। मौका हो, तो जरा राजा साहब के खजानची से कहिएगा, पुराना हिसाब बहुत दिन से पड़ा हुआ है, अब तो सफाई हो जाए! हम सब ऐसा कौन-सा नफा लेते हैं कि दो-दो साल हिसाब ही न हो?’

प्रवीण ने कहा, ‘इस समय तो पान-वान रहने दो भाई, देर हो जाएगी। जब उन्हें मुझसे मिलने का इतना शौक है और मेरा इतना सम्मान करते हैं, तो अपना भी धर्म है कि उनको मेरे

कारण कष्ट न हो। हम तो गुणग्राहक चाहते हैं, दौलत के भूखे नहीं। कोई अपना सम्मान करे, तो उनकी गुलामी करें। अगर किसी को रियासत का घमंड हो, तो हमें उसकी परवाह नहीं।'

प्रवीण राजा साहब के विशाल भवन के सामने पहुँचे, तो दीये जल चुके थे। अमीरों और रईसों की मोटरें खड़ी थीं। वरदीपोश दरबान द्वार पर खड़े थे। एक सज्जन मेहमानों का स्वागत कर रहे थे। प्रवीणजी को देखकर वह जरा झिझके। फिर उन्हें सिर से पाँव तक देखकर बोले, 'आपके पास नवेद है?'

प्रवीण की जेब में नवेद था। पर इस भेदभाव पर उन्हें क्रोध आ गया। उन्हीं से क्यों नवेद माँगा जाए? औरों से भी क्यों न पूछा जाए? बोले, 'जी नहीं, मेरे पास नवेद नहीं है। अमर आप अन्य महाशयों से नवेद माँगते हों, तो मैं भी दिखा सकता हूँ। वरना मैं इस भेद को अपने लिए अपमान की बात समझता हूँ। आप राजा साहब से कह दीजिए, प्रवीण जी आए थे और द्वार से लौट गए।'

'नहीं-नहीं, महाशय, अंदर चलिए। मुझे आपसे परिचय न था। बेअदबी माफ कीजिए। आप ही ऐसे महानुभावों से तो महफिल की शोभा है। ईश्वर ने आपको वह वाणी प्रदान की है कि क्या कहना!'

इस व्यक्ति ने प्रवीण को कभी न देखा था। लेकिन जो कुछ उसने कहा, वह प्रत्येक साहित्यसेवी के विषय में कह सकते हैं और हमें विश्वास है कि कोई साहित्यसेवी इस दाद की उपेक्षा नहीं कर सकता।

प्रवीण अंदर पहुँचे तो देखा, बारहदरी के सामने विस्तृत और सुसज्जित प्रांगण में बिजली के कुमकुमे अपना प्रकाश फैला रहे हैं। मध्य में एक हौज है, हौज में संगमरमर की परी, परी के सिर पर फौवारा, फौवारे की फुहारें रंगीन कुमकुमों से रंजित होकर ऐसी मालूम होती थीं, मानो इंद्रधनुष पिघलकर ऊपर से बरस रहा है। हौज के चारों ओर मेजें लगी हुई थीं। मेजों पर सफेद मेजपोश, ऊपर सुंदर गुलदस्ते।

प्रवीण को देखते ही राजा साहब ने स्वागत किया, 'आइए, आइए! अब की 'हंस' में आपका लेख देखकर दिल फड़क उठा है। मैं तो चकित हो गया। मालूम ही न था कि इस नगर में आप जैसे रत्न भी छिपे हुए हैं।'

फिर उपस्थित सज्जनों से उनका परिचय देने लगे, 'आपने महाशय प्रवीण का नाम तो सुना होगा। यह आप ही हैं। क्या माधुर्य है, क्या ओज है, क्या भाव है, क्या सूझ है, क्या चमत्कार है, क्या प्रवाह है कि वाह! वाह! मेरी तो आत्मा जैसे नृत्य करने लगती है!'

एक सज्जन ने, जो अँग्रेजी सूट में थे, प्रवीण को ऐसी निगाह से देखा मानो वह चिड़ियाघर का कोई जीव हों, और बोले, 'आपने अँग्रेजी के कवियों का भी अध्ययन किया है-बाइरन, शेली, कीट्स आदि।'

प्रवीण ने रूखाई से जवाब दिया, 'जी हाँ, थोड़ा-बहुत देखा तो है।'

'आप इन महाकवियों में से किसी की रचनाओं का अनुवाद कर दें तो आज हिंदी भाषा की अमर सेवा करें।'

प्रवीण अपने को बाइरन, शेली आदि से जौ-भर भी कम न समझते थे। वे अँग्रेजी के कवि थे। उनकी भाषा, शैली, विषय-व्यंजना सभी अँग्रेजों की रूचि के अनुकूल था। उनका अनुवाद करना वह अपने लिए गौरव की बात न समझते थे, उसी तरह जैसे वे उनकी रचनाओं का अनुवाद करना अपने लिए गौरव की वस्तु न समझते। बोले, 'हमारे यहाँ आत्म-दर्शन का अभी इतना अभाव नहीं है कि हम विदेशी कवियों से भिक्षा माँगें। मेरा विचार है कि कम-से-कम इस विषय में भारत अब भी पश्चिम को कुछ सिखा सकता है।'

यह अनर्गल बात थी। अँग्रेजी के भक्त महाशय ने प्रवीण को पागल समझा।

राजा साहब ने प्रवीण को ऐसी आँखों से देखा, जो कह रही थीं—ज़रा मौका-महल देखकर बातें करो! और बोले, 'अँग्रेजी साहित्य का क्या पूछना! कविता में तो वह अपना जोड़ नहीं रखता।'

अँग्रेजी के भक्त महाशय ने प्रवीण को सगर्व नेत्रों से देखा, 'हमारे कवियों ने अभी तक कविता का अर्थ ही नहीं समझा। अभी तक वियोग और नख-सिख को कविता का आधार बनाए हुए हैं।'

प्रवीण ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया, 'मेरा विचार है कि आपने वर्तमान कवियों का अध्ययन नहीं किया, या किया तो उतरी आँखों से।'

राजा साहब ने अब प्रवीण की जबान बंद कर देने का निश्चय किया, 'आप मिस्टर परांजपे हैं, प्रवीणजी! आपके लेख अँग्रेजी पत्रों में छपते हैं और बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।'

इसका आशय यह था कि अब आप न बहकिए।

प्रवीण समझ गए। परांजपे के सामने उन्हें नीचा देखना पड़ा। विदेशी वेशभूषा और भाषा का यह भक्त जाति-द्रोही होकर भी इतना सम्मान पाए, यह उनके लिए असह्य था। पर करते क्या?

उसी वेश के एक दूसरे सज्जन आए। राजा साहब ने तपाक से उनका अभिवादन किया, 'आइए, डाक्टर चड्ढा! कैसे मिजाज हैं?'

डाक्टर साहब ने राजा साहब से हाथ मिलाया और फिर प्रवीण की ओर जिज्ञासा भरी आँखों से देखकर पूछा, 'आपकी तारीफ?'

राजा साहब ने प्रवीण का परिचय दिया, 'आप महाशय प्रवीण हैं, आप भाषा के अच्छे कवि और लेखक हैं।'

डाक्टर साहब ने एक खास अंदाज से कहा, 'अच्छा! आप कवि हैं!' और बिना कुछ पूछे आगे बढ़ गए।

फिर उसी वेश के एक और महाशय पधारे। यह नामी बैरिस्टर थे। राजा साहब ने उनसे भी प्रवीण का परिचय कराया। उन्होंने भी उसी अंदाज से कहा, 'अच्छा! आप कवि हैं! और आगे बढ़ गए। यही अभिनय कई बार हुआ। और हर बार प्रवीण को यही दाद मिली—'अच्छा! आप कवि हैं!'

यह वाक्य हर बार प्रवीण के हृदय पर एक नया आघात पहुँचाता था। उसके नीचे जो

भाव था, उसे प्रवीण खूब समझते थे। उसका सीधा-सादा आशय यह था कि तुम अपने खयाली पुलाव पकाते हो, पकाओ। यहाँ तुम्हारा क्या प्रयोजन? तुम्हारा इतना साहस कि तुम इस सभ्य समाज में बेधड़क आओ!

प्रवीण मन-ही-मन अपने ऊपर झुँझला रहे थे। निमंत्रण पाकर उन्होंने अपने को धन्य माना था, पर यहाँ आकर उनका जितना अपमान हो रहा था, उसके देखते तो वह संतोष की कुटिया स्वर्ग थी। उन्होंने अपने मन को धिक्कारा— 'तुम जैसे सम्मान के लोभियों का यह दंड है। अब तो आँखें खुलीं, तुम कितने सम्मान के पात्र हो! तुम इस स्वार्थमय संसार में किसी के काम नहीं आ सकते, न उन्हें तुम्हारे द्वारा कोई मुकद्दमा पाने की आशा है। डाक्टर या हकीम तुम्हारा सम्मान क्यों करें? उन्हें तुम्हारे घर बिना फीस आने की इच्छा नहीं। तुम लिखने के लिए बने हो, लिखे जाओ। बस, और संसार में तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं।'।

सहसा लागों में हलचल मच गई। आज के प्रधान अतिथि का आगमन हुआ। यह महाशय हाईकोर्ट के जज नियुक्त हुए थे। इसी उपलक्ष्य में यह जलसा हो रहा था। राजा साहब ने लपककर जल्द हाथ मिलाया और आकर प्रवीण से बोले, 'आप अपनी कविता तो लिख ही लाए होंगे? '

प्रवीण ने कहा, 'मैंने कोई कविता नहीं लिखी।'।

'सच! तब तो तुमने गजब ही कर दिया। अरे भले आदमी, अब तो कोई चीज लिख डालो। दो-ही चार पंक्तियाँ हो जाएँ। बस! ऐसे अवसर पर एक कविता का पढ़ा जाना लाजिमी है।'।

'मैं इतनी जल्दी कोई चीज नहीं लिख सकता।'।

'मैंने व्यर्थ ही इतने आदमियों से आपका परिचय कराया? '

'बिलकुल व्यर्थ।'।

'अरे भाई जान, किसी प्राचीन कवि की कोई चीज सुना दीजिए। यहाँ कौन जानता है! '

'जी नहीं, क्षमा कीजिएगा। मैं भाट नहीं, न कत्थक हूँ।'।

यह कहते हुए प्रवीण जी तुरंत वहाँ वे चल दिए। घर पहुँचे तो उनका चेहरा खिला हुआ था।

सुमित्रा ने प्रसन्न होकर पूछा, 'इतनी जल्दी कैसे आ गए? '

'मेरी वहाँ कोई जरूरत न थी।'।

'चलो, चेहरा खिला हुआ है, खूब सम्मान हुआ होगा।'।

'हाँ, सम्मान तो जैसी आशा न थी, वैसा हुआ।'।

'खुश बहुत हो।'।

'इसी से कि आज मुझे हमेशा के लिए सबक मिल गया। मैं दीपक हूँ और जलने के लिए बना हूँ। आज मैं इस तत्त्व को भूल गया था। ईश्वर ने मुझे ज्यादा बहकने न दिया। मेरी यह कुटिया ही मेरे लिए स्वर्ग है। मैं आज यह तत्त्व पा गया कि साहित्य-सेवा पूरी तपस्या है।'।

## मोटेरामजी शास्त्री

पंडित मोटेराम जी शास्त्री को कौन नहीं जानता? आप अधिकारियों का रुख देखकर काम करते हैं। स्वदेशी आंदोलन के दिनों में आपने उस आंदोलन का खूब विरोध किया था। स्वराज्य आंदोलन के दिनों में भी आपने अधिकारियों से राजभक्ति की सनद हासिल की थी। मगर जब इतनी उछल-कूद पर भी उनकी तकदीर की मीठी नींद न टूटी और अध्यापन-कार्य से पिंड न छूटा, तो अंत में आपने एक नई तदबीर सोची। घर में जाकर धर्मपत्नी से बोले, 'इन बूढ़े तोतों को रटाते-रटाते मेरी खोपड़ी पच्ची हुई जाती है। इतने दिनों विद्या-दान देने का क्या फल मिला, जो और आगे कुछ मिलने की आशा करूँ?'

धर्मपत्नी ने चिंतित होकर कहा, 'भोजन का भी तो कोई सहारा चाहिए?'

मोटेराम—तुम्हें जब देखो, पेट ही की फिक्र पड़ी रहती है। कोई ऐसा विरला ही दिन जाता होगा कि निमंत्रण न मिलते हों। और चाहे कोई निंदा ही करे, पर मैं परोसा लिए बिना नहीं आता हूँ। क्या आज ही सब यजमान मरे जाते हैं? मगर जन्म-भर पेट ही जिलाया तो क्या किया? संसार का कुछ सुख भी तो भोगना चाहिए। मैंने वैद्य बनने का निश्चय किया है।

स्त्री ने आश्चर्य से कहा—वैद्य कैसे बनोगे, कुछ वैद्यकी पढ़ी भी है?

मोटेराम—वैद्यक बढ़ने से कुछ नहीं होता, संसार में विद्या का इतना महत्त्व नहीं, जितना बुद्धि का। दो-चार सीधे-सादे लटके हैं, बस और कुछ नहीं है। भिषगाचार्य हो या नहीं? किसी को क्या गरज पड़ी है, जो मेरी परीक्षा लेता फिरे। एक मोटा-सा साइनबोर्ड बनवा लूँगा। उस पर ये शब्द लिखे होंगे—'यहाँ स्त्री-पुरुषों के रोगों की चिकित्सा विशेष रूप से की जाती है।' दो-चार पैसे का हरड़-बहेड़ा-आँवला कूट-छानकर रख लूँगा। बस इस काम के लिए इतना सामान पर्याप्त है। हाँ, समाचार-पत्रों में विज्ञापन दूँगा और नोटिस बँटवाऊँगा। उसमें लंका, मद्रास, रंगून, करांची आदि दूरस्थ स्थानों के सज्जनों की चिट्ठियाँ दर्ज की जाएँगी। ये मेरे चिकित्सा-कौशल के साक्षी होंगे। जनता को क्या पड़ी है कि वह इस बात का पता लगाती फिरे कि उन स्थानों में इन नामों के मनुष्य रहते हैं, या नहीं। फिर देखो, वैद्यक कैसे चलती है।'

स्त्री—लेकिन बिना जाने-बूझे दवा दोगे, तो फायदा क्या करेगी?

मोटेराम—फायदा न करेगी, मेरी बला से। वैद्य का काम दवा देना है, वह मृत्यु को परास्त करने का ठेका नहीं लेता। और फिर जितने आदमी बीमार पड़ते हैं, सभी तो नहीं मर जाते। मेरा तो यह कहना है कि जिन्हें कोई औषधि नहीं दी जाती, वे विकार शांत हो जाने पर आप ही अच्छे हो जाते हैं। वैद्यों को बिना माँगे यश मिलता है। पाँच रोगियों में एक भी अच्छा हो गया, तो उसका यश मुझे अवश्य ही मिलेगा। शेष चार मर गए, तो मेरी निंदा

करने थोड़े ही आवेंगे। मैंने बहुत विचार करके देख लिया, इससे अच्छा कोई काम नहीं है। लेख लिखना मुझे आता ही है, कवित्त बना ही लेता हूँ, पत्रों में आयुर्वेद के महत्त्व पर दो-चार लेख लिख दूँगा। उनमें जहाँ-तहाँ दो-चार कवित्त भी जोड़ दूँगा और लिखूँगा भी जरा चटपटी भाषा में। फिर देखो, कितने उल्लू फँसते हैं। यह न समझो कि मैं इतने दिनों केवल तोते ही रटाता रहा हूँ। मैं नगर के सफल वैद्यों की चालों का अवलोकन करता रहा हूँ और इतने दिनों के बाद मुझे उनकी सफलता के मूलमंत्र का ज्ञान हुआ है। ईश्वर ने चाहा तो एक दिन तुम सिर से पाँव तक सोने से लदी होगी।'

स्त्री ने अपने मनोल्लास को दबाते हुए कहा—मैं इस उम्र में भला क्या गहने पहनूँगी, न अब वह अभिलाषा ही है, पर यह तो बताओ कि तुम्हें दवाएँ बनानी भी तो नहीं आतीं, कैसे बनाओगे, रस कैसे बनेंगे, दवाओं को पहचानते भी तो नहीं हो?

मोटेराम—प्रिये! तुम वास्तव में बड़ी मूर्खा हो। अरे, वैद्यों के लिए इन बातों में से एक की भी आवश्यकता नहीं। वैद्य की चुटकी की राख ही रस है, भस्म है, रसायन है। बस, आवश्यकता है, कुछ ठाट-बाट की। एक बड़ा-सा कमरा चाहिए, उसमें एक दरी हो, ताखों पर दस-पाँच शीशियाँ-बोतलें हों। इसके सिवा और कोई चीज की दरकार नहीं, और सब कुछ बुद्धि आप-ही-आप कर लेती है। मेरे साहित्य-मिश्रित लेखों का बड़ा प्रभाव पड़ेगा, तुम देख लेना। अलंकारों का मुझे कितना ज्ञान है, यह तो तुम जानती ही हो। आज इस भूमंडल पर मुझे ऐसा कोई नहीं दीखता, जो अलंकारों के विषय में मुझसे पेश पा सके। आखिर इतने दिनों घास तो नहीं खोदी है। दस-पाँच आदमी तो कवि-चर्चा के नाते ही मेरे यहाँ आया-जाया करेंगे। बस वही मेरे दलाल होंगे। उन्हीं की मार्फत रोगी आवेंगे। मैं आयुर्वेद-ज्ञान के बल पर नहीं, नासिका-ज्ञान के बल पर धड़ल्ले से वैद्यक करूँगा, तुम देखती तो जाओ।'

स्त्री ने अविश्वास के भाव से कहा—मुझे तो डर लगता है कि कहीं यह विद्यार्थी भी तुम्हारे हाथ से न जाएँ। न इधर के रहो, न उधर के। तुम्हारे भाग्य में तो लड़के पढ़ाना लिखा है, और चारों ओर से ठोकर खाकर फिर तुम्हें वही तोते रटाने पड़ेंगे।

मोटेराम—तुम्हें मेरी योग्यता पर विश्वास क्यों नहीं आता?

स्त्री—'इसलिए कि वहाँ भी धूर्तता करोगे। मैं तुम्हारी धूर्तता से चिढ़ती हूँ। तुम जो कुछ नहीं हो और नहीं हो सकते, वह क्यों बनना चाहते हो? तुम लीडर न बन सके, सिर पटककर रह गए। तुम्हारी धूर्तता ही फलीभूत होती है और इसी से मुझे चिढ़ है। मैं चाहती हूँ कि तुम भले आदमी बनकर रहो, निष्कपट जीवन व्यतीत करो। मगर तुम मेरी बात कब सुनते हो?

मोटेराम—आखिर मेरा नासिक-ज्ञान कब काम आएगा?

स्त्री—किसी रईस की मुसाहिबी क्यों नहीं कर लेते? जहाँ दो-चार सुंदर कवित्त सुना दोगे, वह खुश हो जाएगा और कुछ-न-कुछ दे ही मरेगा। वैद्यक का ढोंग क्यों रचते हो?

मोटेराम—मुझे ऐसे-ऐसे गुण मालूम हैं, जो वैद्यों के बाप-दादों को भी न मालूम होंगे। और सभी वैद्य एक-एक दो-दो रूपए पर मारे-मारे फिरते हैं, मैं अपनी फीस पाँच रूपए रखूँगा, उस पर सवारी का किराया अलग। लोग यही समझेंगे कि यह कोई बड़े वैद्य हैं, नहीं तो इतनी फीस क्यों होती?

स्त्री को अब की कुछ विश्वास आया। बोली—इतनी देर में तुमने एक बात मतलब की कही है। मगर यह समझ लो, यहाँ तुम्हारा रंग न जमेगा, किसी दूसरे शहर में चलना पड़ेगा।

मोटेराम—(हँसकर) क्या मैं इतना भी नहीं जानता? लखनऊ में अड़्डा जमेगा अपना। साल-भर में वह धाक बाँध दूँ कि सारे वैद्य गर्द हो जाएँ। मुझे और भी कितने ही मंत्र आते हैं। मैं रोगी को दो-तीन बार देखे बिना उसकी चिकित्सा ही न करूँगा। मैं जब तक रोगी की प्रकृति से भली भाँति पहचान न लूँ, उसकी दवा नहीं कर सकता। बोलो, कैसी रहेगी?

स्त्री की बाँछे खेल गई। बोली—अब मैं तुम्हें मान गई। अवश्य चलेगी तुम्हारी वैद्यकी, अब मुझे कोई संदेह नहीं रहा। मगर गरीबों के साथ यह मंत्र न चलाना, नहीं तो धोखा खाओगे।

साल भर गुजर गया।

भिषगाचार्य पंडित मोटेराम जी शास्त्री की लखनऊ में धूम मच गई। अलंकारो का ज्ञान तो उन्हें था ही, कुछ गा-बजा भी लेते थे। उस पर गुप्त रोगों के विशेषज्ञ। रसिकों के भाग्य जागे। पंडित जी उन्हें कवित्त सुनाते, हँसाते और बलकारक औषधियाँ खिलाते और वह रईसों में, जिन्हें पुष्टिकारक औषधियों की विशेष चाह होती है, उनकी तारीफों के पुल बाँधते। साल ही भर में वैद्यजी का रंग जमा, कि वायद व शायद। गुप्त रोगों के चिकित्सक लखनऊ में एकमात्र वही थे। गुप्त रूप से चिकित्सा भी करते। विधवा रानियों और शौकीन अदूरदर्शी रईसों में आपकी खूब पूजा होने लगी। किसी को अपने सामने समझते ही न थे।

मगर स्त्री उन्हें बराबर समझाया करती कि रानियों के झमेले में न फँसो, नहीं तो एक दिन पछताओगे।

मगर भावी तो होकर ही रहती है, कोई लाख समझाए-बुझाए। पंडितजी के उपासकों में बिड़हल की रानी भी थीं। राजा साहब का स्वर्गवास हो चुका था, रानी साहिबा न जाने किस जीर्ण रोग से ग्रस्त थीं। पंडितजी उनके यहाँ दिन में पाँच-पाँच बार जाते। रानी साहिबा उन्हें एक क्षण के लिए भी अपने पास से हटने न देना चाहती थीं। पंडितजी के पहुँचने में देर हो जाती तो बेचैन हो जातीं। एक मोटर नित्य उनके द्वार पर खड़ी रहती थी। अब पंडितजी ने खूब केंचुली बदली थीं। तंजेब की अचकन पहनते, बनारसी साफा बाँधते और पंप जूता डालते थे। मित्रगण भी उनके साथ मोटर पर बैठकर दनदनाया करते थे। कई मित्रों को रानी साहिबा के दरबार में नौकर रखवा दिया। रानी साहिबा भला अपने मसीहा की बात कैसे टालतीं?

मगर चखें जफाकार और ही षड्यंत्र रच रहा था।

एक दिन पंडितजी, रानी साहिबा की गोरी-गोरी कलाई पर एक हाथ रखे नब्ज देख रहे थे, और दूसरे हाथ से उनके हृदय की गति की परीक्षा कर रहे थे कि इतने में कई आदमी सोंटे लिए हुए कमरे में घुस आए और पंडितजी पर टूट पड़े। रानी ने भागकर दूसरे कमरे की शरण ली और किवाड़ बंद कर लिए। पंडितजी पर बेभाव पड़ने लगी। यों तो पंडितजी भी दमखम के आदमी थे, एक गुप्ती सदैव साथ रखते थे। पर जब धोखे में कई आदमियों ने धर दबाया तो क्या करते? कभी इसका पैर पकड़ते, कभी उसका। हाय! हाय! का शब्द निरंतर मुँह से

निकल रहा था पर उन बेरहमों को उन पर जरा भी दया न आती थी। एक आदमी ने एक लात जमाकर कहा—इस दुष्ट की नाक काट लो।

दूसरा बोला—इसके मुँह में कालिख और चूना लगाकर छोड़ दो।

तीसरा—क्यों वैद्यजी महाराज, बोलो क्या मंजूर है? नाक कटवाओगे या मुँह में कालिख लगवाओगे?

पंडित—हाय! हाय! मर गया। और जो चाहे करो, मगर नाक न काटो।

एक—अब तो फिर इधर न आवेगा?

पंडित—भूलकर भी नहीं, सरकार! हाय मर गया।

दूसरा—आज ही लखनऊ से रफ़ूरेट हो जाओ। नहीं तो बुरा होगा।

पंडित—सरकार, मैं आज ही चला जाऊँगा। जनेऊ की शपथ खाकर कहता हूँ। आप मेरी यहाँ सूरत न देखेंगे।

तीसरा—अच्छा भाई, सब कोई पाँच-पाँच लातें लगाकर छोड़ दो।

पंडित—अरे सरकार, मर जाऊँगा, दया करो।

चौथा—तुम जैसे पाखंडियों का मर जाना ही अच्छा है। हाँ, तो शुरू हो।

पंचलत्ती पड़ने लगी, धमाधम की आवाजें आने लगीं। मालूम होता था, नगाड़े पर चोट पड़ रही है। हर धमाके के बाद एक बार हाय की आवाज निकल आती थी, मानो उसकी प्रतिध्वनि हो।

पंचलत्ती पूजा समाप्त हो जाने पर लोगों ने मोटेरामजी को घसीटकर बाहर निकाला और मोटर पर बैठाकर घर भेज दिया। चलते-चलते चेतावनी दे दी कि प्रातःकाल से पहले भाग खड़े होना, नहीं तो और ही इलाज किया जाएगा।

मोटेराम जी लँगड़ाते, कराहते, लकड़ी टेकते घर में गए और धम से चारपाई पर गिर पड़े। स्त्री ने घबराकर पूछा—कैसा जी है? अरे, तुम्हारा क्या हाल है? हाय-हाय! यह तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है?

मोटेराम—हाय भगवान्, मर गया।

स्त्री—कहाँ दर्द है? इसी मारे कहती थी, बहुत रबड़ी न खाओ। लवणभास्कर ले आऊँ?

मोटेराम—हाय! दुष्टों ने मार डाला। उसी चांडालिनी के कारण मेरी दुर्गति हुई। मारते-मारते सबों ने भुरकुस निकाल लिया।

स्त्री—तो यह कहो कि पिटकर आए हो। हाँ, पिटे तो हो। अच्छा हुआ। हो तुम लातों के ही देवता। कहती थी कि रानी के यहाँ मत आया-जाया करो, मगर तुम कब सुनते थे?

मोटेराम—हाय, हाय! तुझे भी इस दम कोसने की सूझी। मेरा तो बुरा हाल है और तू कोस रही है। किसी से कह दे, ठेला-वेला लावे, रातों-रात लखनऊ से भाग जाना है। नहीं तो सवेरे प्राण न बचेंगे।

स्त्री—नहीं, अभी तुम्हारा पेट नहीं भरा। अभी कुछ दिन यहाँ की हवा खा लो। कैसे मजे से लड़के पढ़ाते थे वहाँ, नहीं तो वैद्य बनने की सूझी। बहुत अच्छा हुआ, अब उम्र भर न



भूलोगे। रानी कहाँ थी कि तुम पिटते रहे और उसने तुम्हारी रक्षा न की?

पंडित—हाय, हाय! वह चुड़ैल तो भाग गई। उसी के कारण। क्या जानता था कि यह हाल होगा, नहीं तो उसकी चकित्सा ही क्यों करता?

स्त्री—हो तुम तकदीर के खोटे। कैसी वैधकी चल गई थी। मगर तुम्हारी करतूतों ने सत्यानाश मार दिया। आखिर फिर वही पढ़ोनी करनी पड़ी। हो तकदीर के खोटे।

प्रातःकाल मोटेराम जी के द्वार पर ठेला खड़ा था और उस पर असबाब लद रहा था। मित्रों में एक भी नजर न आता था। पंडितजी पड़े कराह रहे थे और स्त्री सामान लदवा रही थी।

## जुर्माना

ऐसा शायद ही कोई महीना जाता कि अल्लारक्खी के वेतन से कुछ जुर्माना न कट जाता। कभी-कभी तो उसे 6 रूपए के 5 रूपए ही मिलते, लेकिन वह सब कुछ सहकर भी सफाई के दारोगा मु. खैरातअली खाँ के चंगुल में कभी न आती। खाँ साहब की मातहत में सैकड़ों मेहतारानियाँ थीं। किसी की भी तलब न कटती, किसी पर जुर्माना न होता, न डॉट ही पड़ती। खाँ साहब नेकनाम थे, दयालु थे। मगर अल्लारक्खी उनके हाथों बराबर ताड़ना पाती रहती थी। वह कामचोर नहीं थी, बेअदब नहीं थी, फूहड़ नहीं थी, बदसूरत भी नहीं थी, पहर रात को इस ठंड के दिनों में वह झाड़ू लेकर निकल जाती और नौ बजे तक एकचित्त होकर सड़क पर झाड़ू लगाती रहती। फिर भी उस पर जुर्माना हो जाता। उसका पति हुसैनी भी अवसर पाकर उसका काम कर देता, लेकिन अल्लारक्खी की किस्मत में जुर्माना देना था। तलब का दिन औरों के लिए हँसने का दिन था, अल्लारक्खी के लिए रोने का। उस दिन उसका मन जैसे सूली पर टँगा रहता। न जाने कितने पैसे कट जाएँगे। वह परीक्षा वाले छात्रों की तरह बार-बार जुर्माने की रकम का तखमीना करती।

उस दिन थककर जरा दम लेने के लिए बैठ गई थी। उसी वक्त दारोगा जी अपने इक्के पर आ रहे थे। वह कितना कहती रही, हुजूरआली, मैं फिर काम करूँगी, लेकिन उन्होंने एक न सुनी थी, अपनी किताब में उसका नाम नोट कर लिया था। उसके कई दिन बाद फिर ऐसा ही हुआ। वह हलवाई से एक पैसे के सेवड़े लेकर खा रही थी। उस वक्त दारोगा न जाने किधर से निकल पड़ा था और फिर उसका नाम लिख लिया गया था। न जाने कहाँ छिपा रहता है? जरा भी सुस्ताने लगे कि भूत की तरह आकर खड़ा हो जाता है। नाम तो उसने दो ही दिन लिखा था, पर जुर्माना कितना करता है – अल्ला जाने! आठ आने से बढ़कर एक रूपया न हो जाए। वह सिर झुकाए वेतन लेने जाती और तखमीने से कुछ ज्यादा ही कटा हुआ पाती। काँपते हाथों से रूपए लेकर आँखों में आँसू-भरे लौट आती। किससे फरियाद करे, दारोगा के सामने उसकी सुनेगा कौन?

आज फिर वही तलब का दिन था। इस महीने में उसकी दूध पीती बच्ची को खाँसी और ज्वर आने लगा था। ठंड भी खूब पड़ी थी। कुछ तो ठंड के मारे और कुछ लड़की के रोने-चिल्लाने के कारण उसे रात-भर जागना पड़ता था। कई दिन काम पर जाने में देर हो गई थी। दारोगा ने उसका नाम लिख लिया था। अब की आधे रूपए कट जाएँगे। आधे भी मिल जाएँ तो गनीमत है। कौन जाने कितना कटा है? उसने तड़के बच्ची को गोद में उठाया और झाड़ू लेकर सड़क पर आ पहुँची। मगर वह दुष्ट गोद से उतरती ही न थी। उसने बार-बार दारोगा के आने की धमकी दी, अभी आता होगा, मुझे भी मारेगा, तेरे भी नाक-कान काट लेगा। लेकिन लड़की को अपने नाक-कान कटवाना मंजूर था, गोद से उतरना मंजूर न था।

आखिर जब वह डराने-धमकाने, प्यारने-पुचकारने, किसी उपाय से न उतरी तो अल्लारक्खी ने उसे गोद से उतार दिया और उसे रोती-चिल्लाती छोड़कर झाड़ू लगाने लगी। मगर वह अभागिनी एक जगह बैठकर मन-भर रोती भी न थी। अल्लारक्खी के पीछे लगी हुई बार-बार उसकी साड़ी खींचती, उसकी टाँग से लिपट जाती, फिर जमीन पर लोट जाती और एक क्षण में फिर रोने लगती।

उसने झाड़ू तानकर कहा, 'चुप हो जा, नहीं तो झाड़ू मारूँगी, जान निकल जाएगी। अभी दारोगा दाढ़ीजार आता होगा...।'।

पूरी धमकी मुँह से निकल भी न पाई थी कि दारोगा खैरातअली खाँ सामने से आकर साइकिल से उतर पड़ा। अल्लारक्खी का रंग उड़ गया, कलेजा धक्-धक् करने लगा। या मेरे अल्लाह! कहीं इसने सुन न लिया हो। मेरी आँखें फूट जाएँ। सामने से आया और मैंने देखा नहीं। कौन जानता था, आज पैरगाड़ी पर आ रहा है? रोज तो इक्के पर आता था। नाड़ियों में रक्त का दौड़ना बंद हो गया, झाड़ू हाथ में लिए निःसृतबद्ध खड़ी रह गई।

दारोगा ने डाँटकर कहा-काम करने चलती है तो एक पुछल्ला साथ ले लेती है। इसे घर पर क्यों नहीं छोड़ आई?

अल्लारक्खी ने कातर स्वर में कहा—इसका जी अच्छा नहीं है हुजूर, घर पर किसके पास छोड़ आती...'

'क्या हुआ इसको?'

'बुखार आता है हुजूर!'

'और तू इसे यों छोड़कर रूला रही है। मरेगी या जिएगी?'

'गोद में लिए-लिए काम कैसे करूँ हुजूर!'

'छुट्टी क्यों नहीं ले लेती?'

'तलब कट जाती है हुजूर, गुजारा कैसे होता?'

'इसे उठा ले और घर जा। हुसैनी लौटकर आए तो इधर झाड़ू लगाने के लिए भेज देना।'

अल्लारक्खी ने लड़की को उठा लिया और चलने को हुई, तब दारोगा जी ने पूछा—मुझे गाली क्यों दे रही थी?

अल्लारक्खी की रही-सही जान भी निकल गई। काटो तो लहू नहीं। थर-थर काँपती बोली—नहीं हुजूर, मेरी आँखें फूट जाएँ, जो तुमको गाली दी हो।

और वह फूट-फूटकर रोने लगी।

संध्या समय हुसैनी और अल्लारक्खी दोनों तलब लेने चले। अल्लारक्खी बहुत उदास थी।

हुसैनी ने सांतवना दी—तू इतनी उदास क्यों है? तलब ही न कटेगी, कटने दे। अब की तेरी जान की कसम खाता हूँ, एक घूँट दारू या ताड़ी नहीं पीऊँगा।

'मैं डरती हूँ, बरखास्त न कर दे। मेरी जीभ जल जाए। कहाँ-से-कहाँ?'

'बरखास्त कर देगा, कर दे, उसका अल्लाह भला करे। कहाँ तक रोएँ?'

'तुम मुझे नाहक लिए चलते हो। सबकी सब हँसेंगी।'

‘बरखास्त करेगा तो पूछूँगा नहीं कि किस इल्जाम पर बरखास्त करते हो? गाली देते किसने सुना? कोई अंधेर है, जिसे चाहे, बरखास्त कर दे। और जो कहीं सुनवाई न हुई तो पंचों से फरियाद करूँगा। चौधरी के दरवज्जे पर सर पटक दूँगा।’

‘ऐसी ही एकता रहती तो दारोगा इतना जरीमाना करने पाता?’

‘जितना बड़ा रोग होता है, उतनी बड़ी दवा होती है, पगली!’

फिर भी अल्लारक्खी का मन शांत न हुआ। मुख पर विषाद का धुआँ-सा छाया हुआ था। दारोगा क्यों गाली सुनकर भी बिगड़ा नहीं, उसी वक्त उसे क्यों नहीं बरखास्त कर दिया, यह उसकी समझ में न आता था। वह कुछ दयालु भी मालूम होता था। उसका रहस्य वह न समझ पाती थी और जो चीज हमारी समझ में नहीं आती, उसी से हम डरते हैं। केवल जुरमाना करना होता तो उसने किताब पर उसका नाम लिखा होता। उसको निकालकर बाहर करने का निश्चय कर चुका है, तभी दयालु हो गया था। उसने सुना था कि जिन्हें फाँसी दी जाती है, उन्हें अंत तक खूब-पूरी मिठाई खिलाई जाती है, जिससे मिलना चाहें, उससे मिलने दिया जाता है। निश्चय बरखास्त करेगा।

म्यूनिसिपैलिटी का दफ्तर आ गया। हजारों मेहतारानियाँ जमा थीं, रंग-बिरंगे कपड़े पहने, बनाव-सिंगार किए। पान-सिगरेट वाले भी आ गए थे। खोमचे वाले भी। पठानों का एक दल भी अपने असामियों से रूपए वसूल करने आ पहुँचा। ये दोनों भी जाकर खड़े हो गए।

वेतन बँटने लगा। पहले मेहतारानियों का नंबर था। जिसका नाम पुकारा जाता, वह लपककर जाती और अपने रूपए लेकर दारोगा को मुफ्त की दुआएँ देती हुई चली जाती। चंपा के बाद अल्लारक्खी का नाम बराबर पुकारा जाता था। आज अल्लारक्खी का नाम उड़ गया था। चंपा के बाद जहूरन का नाम पुकारा गया, जो अल्लारक्खी के नीचे था।

अल्लारक्खी ने हताश आँखों से हुसैनी को देखा। मेहतारानियाँ उसे देख-देखकर कानाफूसी करने लगीं। उसके जी में आया, घर चली जाए, यह उपहास नहीं सहा जाता। जमीन फट नहीं जाती कि उसमें समा जाए।

एक के बाद दूसरा नाम आता गया और अल्लारक्खी सामने के वृक्षों की ओर देखती रही। उसे अब उसकी परवाह न थी कि किसका नाम आता है, कौन जाता है, कौन उसकी ओर ताकता है, कौन उस पर हँसता है।

सहसा अपना नाम सुनकर वह चौंक पड़ी। धीरे से उठी और नवेली बहू की भाँति पग उठाती हुई चली। खंजाची ने पूरे 6 रूपए उसके हाथ पर रख दिए।

उसे आश्चर्य हुआ। खंजाची ने भूल तो नहीं की? इन तीनों बरसों में पूरा वेतन तो कभी मिला नहीं। और अब की तो आधा भी मिले तो बहुत है। वह एक सेकेंड वहीं खड़ी रही कि शायद खंजाची उससे रूपए वापस माँगे। जब खंजाची ने पूछा, ‘अब क्यों खड़ी है, जाती क्यों नहीं?’ तब वह धीरे से बोली, ‘यह तो पूरे रूपए हैं।’

खंजाची ने चकित होकर उसकी ओर देखा।

‘तो क्या चाहती है, कम मिलें?’

‘कुछ जरीमाना नहीं है?’

‘नहीं, अब की कुछ जरीमाना नहीं है।’

अल्लारक्खी चली, पर उसका मन प्रसन्न था, वह पछता रही थी कि दारोगा जी को गाली क्यों दी!